नई दिल्ली
रविवार, 10 जनवरी 2021
मूल्य-15.00
राष्ट्रीय
वर्ष-3 अंक-12, पृष्ठ- 8
RNI: DELHIN / 2018 / 76679
Postal Reg. No. DL(C)-01/1425/2019-21
License To Post Without Pre Payment No. U(C)-164/2019-2021

संडे नवजीवन

आकार पटेल की किताब का अंशः इस तरह मुसलमानों को कर रहे अलग-थलग 3

यह रुकावट करोड़ों नेहा के सामने, समाज को ढूंढ़ने होंगे इनके सपनों को पंख देने के प्रयास के तरीके 4

दर्शकों को सिनेमा हॉल तक लाने की है चुनौती 8

Freedom is in Peril: Defend it with all your might Jawaharlal Nehru

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.naitonalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com

लोकप्रियता का दंभ जब निरकुंश हो जाए

लोकतंत्र में चुनावी हार-जीत होती रहती है, पर ट्रंप का बरताव बड़े खतरे की ओर इशारा

लोकप्रियता का दंभ जब सिर पर ऐसा चढ़ जाए कि सोचने-समझने की ताकत कुंद हो जाए तो क्या होता है? वही होता है जो अमेरिका में हो रहा है। चुनावी लड़ाई में हार चुके डोनाल्ड ट्रंप के भाषण के बाद जिस तरह वाशिंगटन डीसी में बवाल हुआ, लोग कैपिटल बिल्डिंग पर जैसे कब्जा करने को उतारू हुए, उसे अमेरिकी इतिहास का एक काला दिन ही कहा जा सकता है। इलेक्टोरल कॉलेज की 306 सीटों को जीतकर बहुमत के 270 के आंकड़े को बड़े आराम से पार कर जाने वाले जो बिडेन को सत्ता सौंपने में ट्रंप ने जिस तरह आखिरी वक्त में बेसिर-पैर तरीके से रोड़े अटकाने की कोशिश की, वह दुनिया में लोकतंत्र के लिए खतरा ही है।

आशीष रे

अमेरिका में राष्ट्रपति पद के लिए हुए मतदान के 65 दिन बाद, 7 जनवरी को सुबह 3.32 बजे अमेरिका की थकाऊ चुनाव प्रक्रिया अंततः संपन्न हो गई।

देश के दो विधान मंडलों– प्रतिनिधिसभा और सीनेट की संयुक्त बैठक जिसे संयुक्त रूप से कांग्रेस के रूप में जाना जाता है– ने अमेरिका के अगले राष्ट्रपति के रूप में डेमोक्रेट जोसेफ बिडेन के नाम पर मुहर लगा दी। निवर्तमान राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के कट्टर समर्थकों की आपत्तियों के बावजूद कांग्रेस ने यह फैसला किया। ट्रंप के समर्थकों ने बिना किसी आधार एरिजोना और पेंसिल्वेनिया राज्यों के परिणामों पर आपत्ति जताई थी।

लेकिन जब वाशिंगटन डीसी की कैपिटल बिल्डिंग में कांग्रेस अगले राष्ट्रपति के तौर पर जो बिडेन के नाम को मंजूरी देने की औपचारिकताओं को पूरा करने में जुटी थी, बाहर ट्रंप समर्थकों ने हंगामा काट रखा था। हजारों लोगों ने इमारत पर धावा बोल दिया और लोगों को रोकने में पुलिस को गोलियां चलानी पड़ीं जिसमें चार लोगों की मौत हो गई। कई लोग घायल हुए हैं। अपनी पराजय के बाद से ही ट्रंप अपने धुर दक्षिणपंथी समर्थकों को उकसा रहे थे कि 6 जनवरी, नए राष्ट्रपति के प्रमाणन के दिन, वे वाशिंगटन डीसी में जुटें। अंततः जब वह दिन आया, ट्रंप ने इन लोगों को संबोधित किया। व्हाइट हाउस में अपने दफ्तर के पास ही एक पार्क में 70 मिनट के अपने भाषण में ट्रंप ने कहा, "कमजोरी के साथ आप कभी भी अपने देश को ले नहीं पाएंगे।" उसके बाद तो ट्रंप समर्थक देशद्रोह-जैसी हरकत पर उतर आए जिसके लिए निश्चित तौर पर उन्हें ट्रंप ने ही उकसाया था।

***

ट्रंप की रिपब्लिकन पार्टी से सांसद लिज़ चेनी ने फॉक्स न्यूज टीवी चैनल से बातचीत के दौरान बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा, "राष्ट्रपति ने भीड़ को उकसाया। राष्ट्रपति ने भीड़ को संबोधित किया। उन्होंने चिनगारी भड़काई।"

इस बीच, अमेरिका के कई समाचार संगठनों ने दावा किया कि ट्रंप के कैबिनेट सहयोगियों ने उन्हें सत्ता से बेदखल करने के विकल्प पर भी काफी सोच-विचार किया। अमेरिकी संविधान के 25वें संशोधन के खंड-चार के प्रावधानों के मुताबिक, सीनेट का पदेन अध्यक्ष होने के नाते उप-राष्ट्रपति माइक पेंस और ट्रंप के 24 कैबिनेट सदस्यों में से 13 को सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा को लिखकर देना पड़ता कि राष्ट्रपति अपने कार्यालय को संभालने तथा अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने में असमर्थ हैं। उसके बाद उपराष्ट्रपति पेंस तत्काल ही कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्यभार संभाल लेते।

लेकिन अमेरिका में किसी राष्ट्रपति से सत्ता लेने की यह व्यवस्था स्वास्थ्य संबंधी परेशानियों की संभावनाओं के मद्देनजर बनाई गई थी, यानी अगर कभी किसी कारणवश अमेरिका का राष्ट्रपति शारीरिक रूप से इस हालत में पहुंच जाए कि उसके लिए अपने कर्तव्यों का निर्वाह मुश्किल हो जाए तो बिना किसी परेशानी एक तय व्यवस्था के तहत सत्ता का हस्तांतरण हो पाए। ऐसी स्थिति में अगर ट्रंप को सत्ता से इस रास्ते बेदखल करने की कोशिश होती तो ट्रंप के शारीरिक रूप से स्वस्थ होने का सवाल उठता और तब यह तर्क दिया जा सकता था कि ट्रंप का मानसिक स्वास्थ्य शासन करने के काबिल नहीं। लेकिन उस स्थिति में भी तीन सप्ताह के भीतर दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत से ऐसी स्थिति की पुष्टि की जरूरत पड़ती जो इतना आसान भी नहीं था। संभवतः इसी कारण इस विकल्प को अंततः छोड़ दिया गया।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि ट्रंप के खिलाफ मुकदमा चलाने की संभावना भी खत्म हो गई है। कैपिटल बिल्डिंग में घुसने और उपद्रव मचाने के आरोप में पुलिस ने आरंभिक तौर पर कम-से-कम 52 लोगों को गिरफ्तार किया है। कैपिटल बिल्डिंग परिसर में गैरकानूनी तरीके से प्रवेश और वहां हिंसा भड़काने के कहीं संगीन जुर्म के आरोप में तमाम लोगों पर मुकदमा चलेगा। संभवतः कई को लंबे समय की जेल की सजा भी झेलनी पड़े। ऐसी स्थिति में सारे हंगामे और हिंसा के लिए जो व्यक्ति जिम्मेदार था और जिसके कारण कांग्रेस का कामकाज घंटों तक नहीं हो सका, उसे कानून के ऊपर कैसे माना जा सकता है? अगर इस मामले में ट्रंप को किसी तरह की कोई छूट मिलती है तो यह लोकतंत्र और कानून के शासन का मखौल ही होगा।

जब कैपिटल बिल्डिंग के बाहर हिंसा और अफरा-तफरी का मंजर था और इसके तमाम वीडियो वायरल हो रहे थे, अमेरिका के अगले राष्ट्रपति के तौर पर चुने गए जो बिडेन ने वीडियो-कास्ट में कहाः "यह असहमति नहीं, अव्यवस्था है। अराजकता है। यह देशद्रोह-जैसा है।"

रिपब्लिकन सीनेटर और राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार रह चुके मिट रोमनी ने इस "खतरनाक खेल" में ट्रंप का साथ देने वाले साथी सांसदों से कहा कि उन्हें "हमेशा ही हमारे लोकतंत्र के खिलाफ एक अभूतपूर्व हमले में शामिल माना जाएगा।"

पेंस की ही तरह प्रभावशाली रिपब्लिकन सीनेटर मिच मैककोनेल ने भी ट्रंप का खुलकर विरोध किया। उन्होंने ऐलान किया कि उन्हें इस तरह ठगों के झुंड, भीड़तंत्र और धमकियों की बदौलत बाहर नहीं किया जा सकता। जो बिडेन 20 जनवरी को अमेरिका के राष्ट्रपति के तौर पर शपथ लेने वाले हैं।

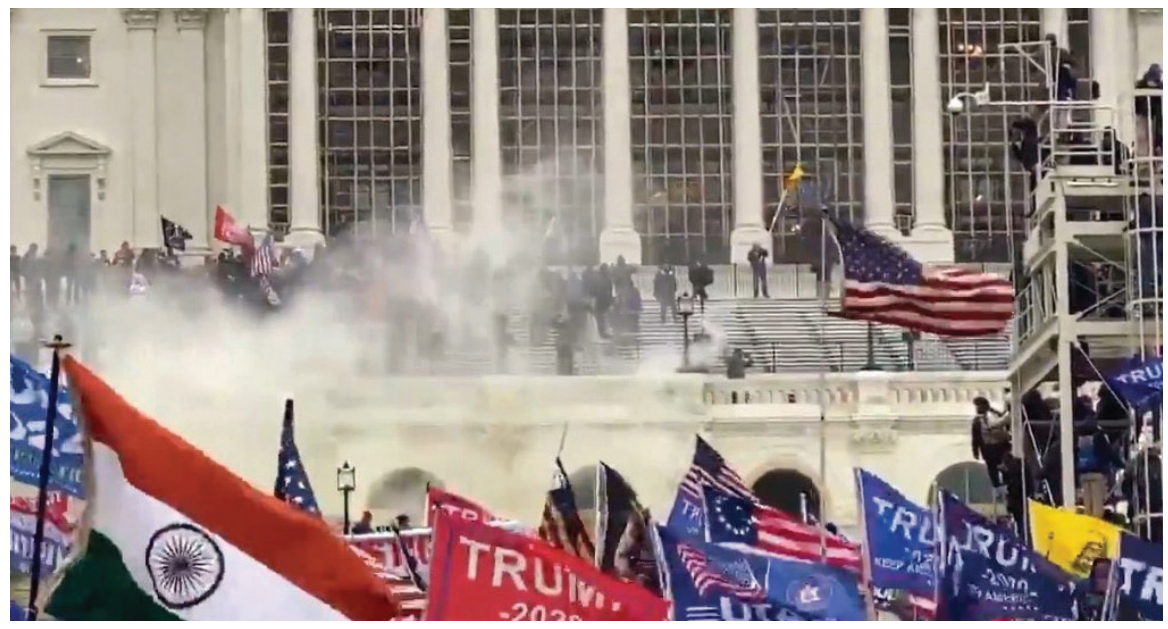

मोदी को अंततः करना पड़ा ट्रंप को डंप

ए.जे. प्रबल

वाशिंगटन डीसी के बाहर ट्रंप समर्थकों के हंगामे के बीच भारत के राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे को लहराए जाने ने तत्काल ध्यान खींचा। कैपिटल बिल्डिंग पर धावा बोलने वाले ट्रंप समर्थकों की भीड़ में शायद ही किसी और देश का झंडा लहराया गया था। कैपिटल बिल्डिंग वह जगह है जहां अमेरिकी कांग्रेस की बैठक होती है, यानी अमेरिकी संसद।

कुछ लोगों को किसी दूसरे देश में हो रहे दंगे के दौरान तिरंगे का लहराय जाना बेशक अटपटा लगे लेकिन इसमें हैरानी जैसी बात नहीं। ओवरसीज फ्रेंड्स ऑफ बीजेपी ने ट्रंप का खुलकर समर्थन किया था और खुद मोदी ने भी तो ह्यूस्टन में 2019 में हाउडी मोदी रैली में 'अबकी बार ट्रंप सरकार' का नारा लगाया था। इतना ही नहीं, 2020 में 'नमस्ते ट्रंप' कार्यक्रम पर विदेश नीति के जानकारों की आपत्तियों के बाद भी ट्रंप को भारत आमंत्रित किया गया। लेकिन अब मोदी पलट गए हैं। वाशिंगटन में हो रहे बवाल पर मोदी ने ट्वीट किया, "वाशिंगटन डीसी में दंगा-फसाद देखकर निराशा हुई। सत्ता का नियमानुसार शांतिपूर्ण तरीके से हस्तांतरण होना चाहिए। लोकतांत्रिक प्रक्रिया को गैरकानूनी गतिविधियों की बलि नहीं चढ़ने दिया जा सकता।" लगता है, अंततः मोदी ने ट्रंप को डंप कर ही दिया।

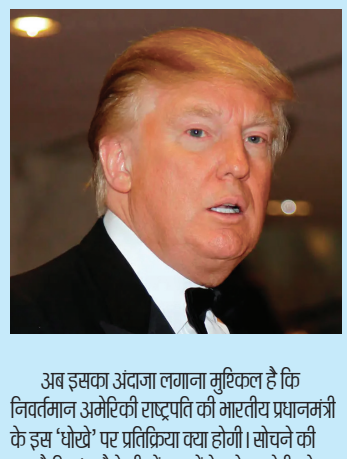

अब इसका अंदाजा लगाना मुश्किल है कि निवर्तमान अमेरिकी राष्ट्रपति की भारतीय प्रधानमंत्री के इस 'धोखे' पर प्रतिक्रिया क्या होगी। सोचने की बात है कि ट्रंप जैसे भी हों, उन्होंने हमेशा मोदी को एक अच्छा, शानदार व्यक्ति कहा और उनके साथ अपने विशेष संबंधों को खुले शब्दों में व्यक्त किया। ट्रंप ने यहां तक कहा कि "वह (मोदी) ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें मैं बड़े गर्व के साथ अपना सच्चा मित्र कह सकता हूं।" हैरत नहीं कि राष्ट्रपति पद से हट रहे डोनाल्ड ट्रंप ने तमाम उठा-पटक वाले इस माहौल में भी अपने 'सच्चे दोस्त' को अमेरिका के सर्वोच्च सैन्य सम्मानों में से एक 'लेजन ऑफ मेरिट' से सम्मानित करने का ख्याल रखा। दोनों देशों के संबंधों को नई ऊंचाइयों तक ले जाने और भारत के एक विश्व शक्ति के तौर पर उभरने के कारण डोनाल्ड ट्रंप ने मोदी को यह सम्मान दिया। अभी मुश्किल से एक माह पहले अमेरिका में भारतीय राजदूत तरणजीत सिंह ने प्रधानमंत्री मोदी की ओर से यह सम्मान ग्रहण किया।

इसमें संदेह नहीं कि भारत के साथ रणनीतिक संबंधों का अमेरिका को अरसा-खासा लाभ मिला क्योंकि अमेरिका से सैन्य साजो-सामान का आयात तेजी से बढ़ा। मोदी के साथ अपने खास संबंधों को भुनाते हुए ट्रंप कई अमेरिकी उत्पादों पर आयात शुल्क भी कम कराने में सफल रहे। कई विशेषज्ञों को तो यह भी आशंका है कि तीन विवादास्पद कृषि कानूनों के पीछे भी अमेरिकी लॉबी है जो भारत के कृषि क्षेत्र में घुसना चाह रही है। ट्रंप एक ओर तो अमेरिका के फायदे के ये तमाम काम करते-कराते रहे लेकिन जहां उन्हें सख्त होना था, हुए। 1970 के दशक के बाद यह पहली बार था जब 2018 में भारत को जीएसपी (जनरलाइज्ड सिस्टम ऑफ प्रेफरेंस) से बाहर कर दिया जिसके तहत भारत अमेरिका को बिना शुल्क अपने तमाम उत्पाद बेचता आ रहा था। इसके अलावा एच-1बी, एफ-1, जे-1 वीजा के नियम कड़े करने का नतीजा यह हुआ कि भारतीय आईटी प्रोफेशनल से लेकर छात्रों के लिए अमेरिका जाना मुश्किल हो गया। खैर! अब तो हाल ये है कि मोदी ने अंततः पाला बदल लिया है।

नेपाल में चीन एक बार फिर खुलकर कर रहा हस्तक्षेप

पेज 5

और क्षीरसागर से निकला आत्मनिर्भर वैक्सीन घट

पेज 6

आसपास/ राजेंद्र धोड़पकर

पीएम आवास योजना में नंबर-वन प्रदेश का हाल

न शहर में काम हुआ और न गांवों का भला हुआ

के संतोष

लखनऊ। प्रधानमंत्री आवास योजना को लेकर भारतीय जनता पार्टी के बड़े-बड़े दावे हैं। आंकड़ों के आधार पर केंद्र सरकार ने कहा है कि उत्तर प्रदेश देश में अव्वल है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इसे लेकर मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की प्रशंसा की है। बीते 3 जनवरी को गोरखपुर में योगी आदित्यनाथ ने कहा, '2016 में पीएम आवास योजना में प्रदेश 26वें स्थान पर था। आज देश में नंबर वन है।' लेकिन हकीकत यह है कि खुद भाजपा विधायक योजना में भ्रष्टाचार की पोल खोल रहे हैं, तो खुले आसमान के नीचे रात गुजार रहे गरीब योजना की असलियत की गवाही दे रहे हैं। अब जब पंचायत चुनाव की घोषणा हो गई है, तो शहरी इलाकों के मकान की किस्त रोककर ग्रामीण इलाकों में लॉलीपॉप दिया जा रहा है।

इसे लेकर जारी सूची में मिर्जापुर नगरपालिका परिषद को तीसरा स्थान मिला है। लेकिन यहां जमीन पर स्थिति बेहद खराब है। मिर्जापुर के साथ सोनभद्र और चंदौली में मकान के लिए 1.30 लाख रुपये की मदद की जा रही है। इस योजना में मिर्जापुर जिले में करीब 32 हजार आवास को मंजूरी मिली है। इसमें से 18,674 लोगों को 50 हजार की पहली किस्त मिली है। पहली किस्त मिलने के बाद लोगों ने जर्जर मकान को तोड़कर नए की बुनियाद डाली। लेकिन अब तक मुश्किल से 10 हजार लाभार्थियों को अंतिम किस्त मिली है। 20 हजार से अधिक अधूरे आवासों में लोग किसी तरह पन्नी या तिरपाल डालकर रहने को मजबूर हैं। पक्का पोखरा निवासी रुखसाना ने 50 हजार की पहली किस्त जारी होने के बाद कच्चा घर तुड़वा दिया था। दो साल से किस्त नहीं मिलने के कारण परिवार के सदस्य आधे-अधूरे बने आवास में पन्नी के सहारे रहने के लिए मजबूर हैं। एक अन्य लाभार्थी श्याम सुंदर कहते हैं कि 'विभाग का चक्कर लगाकर थक चुके हैं। अभी तक किस्त जारी नहीं हो सकी। घर कर्ज लेकर रहने लायक बनाया है।' डूडा की परियोजना अधिकारी प्रतिभा श्रीवास्तव खुद की जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ते हुए कहती हैं कि 'स्थानीय स्तर पर डिमांड बनाकर शासन को भेज दी जाती है। किस्त की लेटलतीफी स्थानीय स्तर पर नहीं होती है।'

मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने अपने गृह जनपद गोरखपुर से ही पीएम आवास योजना की शुरूआत की थी। तब कई महिलाओं को मुख्यमंत्री के हाथों आवास को लेकर प्रमाणपत्र मिला था। इनमें से कई महिलाओं को अभी तक आवास की पहली किस्त तक नहीं मिली। गोरखपुर में मीरा देवी, सोना देवी और अंगूरी खातून-जैसी तमाम महिलाओं को योजना का लाभ इसलिए नहीं मिला क्योंकि लेटलतीफी को लेकर वे पार्षद के साथ नगर निगम में शिकायत करने चली गई थीं। अंगूरी देवी ने बताया कि 'बेटा सऊदी कमाने गया, तब छत नसीब हुई। अब मुख्यमंत्री का प्रमाणपत्र भी किनारे रख दिया है।' वहीं मीरा देवी कड़ाके की ठंड में भी टिनशेड में रहने को मजबूर हैं। सीएम के हाथों प्रमाणपत्र पाने वाली सोना देवी टूटे मकान में किराना दुकान चलाकर जीवन-यापन कर रही हैं। पंचायत चुनाव की घोषणा के बाद स्थितियां और खराब हुई हैं। भाजपा के ही एक नगर पंचायत अध्यक्ष कहते हैं कि 'हजारों लाभार्थियों की तीसरी किस्त नहीं आने से मकान की छत अधूरी है। सवाल करने पर अधिकारी कहते हैं कि फंड को ग्रामीण इलाकों के आवास के लिए डायवर्ट कर दिया गया है।'

गोरखपुर विकास प्राधिकरण ने मानबेला में बने 1,500 आवास में से 1,242 लोगों को फ्लैट का आवंटन किया है। 5 से 50 हजार रुपये प्राधिकरण में जमा करने के बाद भी इन्हें फ्लैट का कब्जा नहीं मिल सका है। गोरखपुर विकास प्राधिकरण ने शासन से मदद नहीं मिलने पर खोराबार में प्रस्तावित 1,500 पीएम आवास की योजना को ठंडे बस्ते में डाल दिया है। योजना में फ्लैट पाने वाले अमरजीत सिंह बताते हैं कि 'बैंक से लोन लेकर प्राधिकरण की किस्त जमा कर दी। इसके बाद भी किराये के मकान में रहने की मजबूरी है।'

गोरखपुर में बिछिया निवासी रंजन गौड़ और उनके भाई मनोज को भी पीएम आवास का लाभ मिला था। लॉकडाउन में ऑटो बिक गया। तीसरी किस्त के इंतजार में छत नहीं बन सकी। अब किराये के मकान में रहने को मजबूर हैं। रंजन बताते हैं कि 'तीसरी किस्त के लिए छत जरूरी है। कमाई है नहीं, कैसे छत बनवाएं।' बीते साल खुद गोरखपुर सदर विधायक डॉ. राधामोहन दास अग्रवाल ने घूस की रकम की बातचीत को वायरल किया था जिसके बाद सर्वेयर के खिलाफ मुकदमा दर्ज हुआ था। विधायक का आरोप है कि 'अफसरों और कर्मचारियों की मिलीभगत से बिना घूस के फाइल आगे नहीं बढ़ रही। तीसरी किस्त को लेकर सर्वाधिक शिकायतें हैं।'

विकास प्राधिकरणों के साथ ही आवास विकास परिषद को भी योजना के तहत मकान बनवाने का निर्देश है। परिषद ने लखनऊ में 816, गाजियाबाद में 624, मेरठ में 480, गोंडा में 396, मैनपुरी में 96, फतेहपुर में 96, हरदोई में 96, रायबरेली में 96, मेरठ में 96, कानपुर देहात में 48, कन्नौज में 48, उन्नाव में 48, बहराइच में 48, मऊ में 48, बलरामपुर में 48 तथा बाराबंकी में 48 घर देने की घोषणा की है। इनके लिए परिषद ने पहली सितंबर से बुकिंग भी शुरू कर दी है। लेकिन मकान की बुनियाद खड़ी करने के लिए उसके पास जमीन ही नहीं है।

पंचायत चुनाव के मद्देनजर योगी आदित्यनाथ ने बीते दिनों मुख्यमंत्री आवास योजना की शुरुआत करते हुए पहली किस्त के रूप में 21,562 लाभार्थियों के खाते में 87 करोड़ की रकम ऑनलाइन ट्रांसफर की। ये आवास ग्रामीण इलाकों में बनने हैं। ऐसे में शहर के लाभार्थियों को तीसरी किस्त जल्द मिलने की उम्मीद धूमिल हो गई है।

> गोरखपुर में बिछिया निवासी रंजन गौड़ और उनके भाई मनोज को भी पीएम आवास का लाभ मिला था। रंजन बताते हैं कि 'तीसरी किस्त के लिए छत जरूरी है। कमाई है नहीं, कैसे छत बनवाएं।' बीते साल खुद गोरखपुर सदर विधायक डॉ. राधामोहन दास अग्रवाल ने घूस की रकम की बातचीत को वायरल किया था जिसके बाद सर्वेयर के खिलाफ मुकदमा दर्ज हुआ था। विधायक का आरोप है कि 'अफसरों और कर्मचारियों की मिलीभगत से बिना घूस के फाइल आगे नहीं बढ़ रही। तीसरी किस्त को लेकर सर्वाधिक शिकायतें हैं।'

गोरखपुर के मानबेला में कन्हैयालाल गुप्ता का मकान अधूरा ही है क्योंकि उन्हें अंतिम किस्त अब भी नहीं मिला है।

फोटोः के संतोष

इतिहास बनाने आए हैं, ऐसे नहीं जाएंगे

दिल्ली की सीमा पर सर्दी, बारिश, असुविधाओं और मोदी सरकार के अहंकार से मुकाबला कर रहे ये लोग आखिर इतनी मुश्किलों का सामना कर कैसे रहे हैं? इनमें इतनी ताकत आ कहां से रही है? ये सवाल सबके मन में उठ रहे हैं। लेकिन जब इन लोगों से मिलिए, बात कीजिए तो कोई शंका नहीं रह जाती। सारे सवालों के जवाब मिल जाते हैं। सारी दुविधाएं खत्म हो जाती हैं। यहां पर अड़े लोगों के लिए सवाल उनकी पहचान का है, उनके अस्तित्व का है जिसकाजवाब खोजने वे यहां जुटे हैं और लगता नहीं कि ये यहां से खाली हाथ जाएंगे। दिल्ली की सीमा एक बार फिर आकार ले रहे इतिहास का साक्षी बन रही है।

फोटो: गेटी इमेजेज

अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं ये किसान

विकास बाजपेयी

"यकीन हो तो कोई रास्ता निकलता है
हवा की ओट भी लेकर चिराग जलता है।"

दिल्ली की सीमाओं पर किसान जिस तरह भारी बारिश, कठोर सर्दी, प्रतिकूल परिस्थितियों और निर्मम सरकार का डटकर सामना कर रहे हैं, उसे देखते हुए मंजूर हाशमी की ये पंक्तियां याद आती हैं। शहर में पले-बढ़े होने के नाते मुझे हमेशा दबे-कुचले लोगों के इस भरोसे पर हैरानी होती रही है कि कल सब बेहतर होगा। जिस तरह के हालात ने उनकी जिंदगी को जकड़ रखा है, उसमें अपनी दुनिया के बदल जाने का ख्वाब देखना अपने आप में अजीब है।

फिर भी पंजाब के 'कामरेड' हमेशा से ही सहज-स्वाभाविक, मिलनसार और जोशो-खरोश से भरपूर रहे हैं। इतने मजबूत और उत्साही कि लगे कि उनके सामने कोई भी चुनौती टिक नहीं सकती। इसलिए अपनी मजबूत इच्छाशक्ति, प्रतिकूल परिस्थितियों में जश्न मनाने की काबलियत, हिम्मत और संयम की खूबियों के साथ उन्हें दिल्ली के दरवाजे पर देखना अपने आप में अद्भुत है।

90 वर्षीय शरम सिंह का गांव भारत और पाकिस्तान के बीच जैसे सैंडविच बनकर रह गया है। वह कहते हैं, 'दरिया रावी ने हमारे गांव को काट दिया है। नो मेन्स लैंड के दोनों ओर खेती की जमीन है। गांव वाले दोनों ओर खेती करते हैं लेकिन पाकिस्तान वाले हिस्से में हम केवल गेहूं बोते हैं।' वह बड़ी विनम्रतापूर्वक कहते हैं, 'भारत के अधिकारी हमारे साथ ऐसा सलूक करते हैं जैसे हम पाकिस्तानी हों। लेकिन पाकिस्तानी हमारे साथ ऐसे पेश आते हैं जैसे हम पाकिस्तानी ही हों।' दोनों देशों की तकरार से आम लोगों की जिंदगी पर पड़ रहे असर से वह आजिज आ चुके हैं। कहते हैं, 'मैं तो यही अरदास करता हूं कि भारत और पाकिस्तान में दोस्ती हो जाए तो हर किसी का जीवन आसान और बेहतर हो जाए।' मुझे नहीं पता कि शरम सिंह जी के ऐसे अरदास की वजह से वह 'खालिस्तानी' कहे जाने के काबिल होते हैं या नहीं लेकिन अगर उन्हें खालिस्तानी माना जाता है तो मुझे बेहद खुशी होगी अगर मुझे भी खालिस्तानी मान लिया जाए। समय ने 1947 से 2020 के बीच 91 साल के नाभा सिंह के चेहरे पर जितना असर डाला है, उससे कहीं अधिक उनके दिलो-दिमाग पर। लेकिन किसी भी सूरत में हार न मानने का उनका हौसला अपने कामरेडों के साथ उन्हें इंसाफ के लिए आवाज उठाने को दिल्ली के मुहाने तक खींच लाया। 90 साल से अधिक उम्र के ये दोनों लोग अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा से जुड़े पंजाब के संगठन- कीर्ति किसान यूनियन के स्वयंसेवक हैं।

दलबीर सिंह ढींडसा बटाला के अपेक्षाकृत समृद्ध किसान हैं। लेकिन दिल्ली की सीमाओं पर सब एक हैं- अमीर-गरीब, मध्यम वर्ग-कम आय वर्ग, छोटे-सीमांत किसान सब एकसाथ एक-जैसे हालात का सामना कर रहे हैं। दिल्ली की सर्दी में कठोर रातों का खुले आसमान के नीचे सामना करने में हो रही कठिनाइयों के बारे में पूछे जाने पर वहां मौजूद एक अधेड़ उम्र महिला ने केवल कंधा उचका दिया, मानो कह रही हो कि कोई फर्क नहीं पड़ता।

एक जाने-माने किसान नेता दावा करते हैं कि जब से पंजाब में किसान आंदोलन ने जमीन पाई है, किसानों की आत्महत्या के मामलों में कमी आई है और इसकी वजह यह है कि यह आंदोलन निराशा को आशा में बदलने में कामयाब रहा है। मैं इसे 'मूवमेंट थेरेपी' कहूंगा जिसकी वजह से लोगों में सरकार और उत्पीड़कों की आंखों में आंखें डालकर अड़ने की हिम्मत आई है।

एक लोकप्रिय कहानी है जो माओ चीन के लोगों को सुनाया करते थे जिसमें एक बूढ़ा आदमी एक पहाड़ी को इधर से उधर कर देता है। पहाड़ तो नहीं लेकिन पंजाबी और हरियाणवी युवा कई टन वजन वाले बोल्डर जरूर ले आए और उन्हें किसानों को दिल्ली में घुसने से रोकने के लिए खोदी गई खाई को जरूर कुछ हद तक पाट दिया। उन्होंने पानी की तोपों से छोड़ी गई बौछारों को अपने सीने पर झेला है। आंसू गैस और काली मिर्च के गोलों का सामना किया है और फिर भी बुजुर्ग किसानों की बगल में खड़े रहे हैं। हमारी फोन पर एक पूर्व सैनिक से बात होती है जो कहते हैं, 'हम दिल्ली पहुंच गए हैं, मुकाबले को तैयार हैं।'

***

मेरा एक मित्र बढ़िया न्यूरोसर्जन है। वह बड़ा दयालु है और उसने पंजाब के एक शहर में सुपर-स्पेशलिटी अस्पताल खोल रखा है। मैं उन्हें अक्सर ईमेल भेजता रहता हूं हालांकि नहीं जानता कि उनमें से कितनों को वह बिना पढ़े डिलीट कर देते हैं। लेकिन मैं मानकर चलता हूं कि वह मेरे एक-दो मेल पढ़ लिया करते होंगे और मेरे लिए इतना ही काफी है। हाल ही में मेरी अपने इन मित्र से बात हुई। मैंने जान-बूझकर किसान आंदोलन की बात छेड़ दी। पंजाब की स्थिति के बारे में पूछने से पहले मैंने उन्हें पीएमएसएफ (प्रोग्रेसिव मेडिकोज एंड साइंटिस्ट्स फोरम) के जरिये किसानों तक मेडिकल सहायता पहुंचाने के अपने प्रयासों बारे में बताया। इसपर उनका जवाब था- 'मुझे नहीं पता कि दिल्ली की सीमाओं पर विरोध प्रदर्शन करने वाले लोग कौन हैं लेकिन पंजाब में बहुत ज्यादा अशांति नहीं है। मेरे ड्राइवर ने मुझे बताया कि उसके गांव में इस आंदोलन का शायद ही कहीं कोई प्रभाव है और शहरी क्षेत्रों में तो कहीं कोई प्रभाव नहीं है।'

आंदोलनकारियों ने जिन सरोकारों के लिए ऐसे विरोध प्रदर्शन का रास्ता अपनाया है, वैचारिक रूप से उसके विरुद्ध होने की बात तो समझ में आती है लेकिन अगर कोई कहे कि 'मुझे नहीं पता कि दिल्ली की सीमाओं पर विरोध प्रदर्शन कर रहे ये लोग कौन हैं', तो यह वास्तव में बड़ा ही अफसोसनाक है।

बहरहाल, जब मैंने इस सर्दी में दिल्ली की सीमाओं पर जमे किसानों की बहादुरी, उनके हौसले की तारीफ की तो मेरे उन डॉक्टर मित्र ने कहा, 'बॉस, आप न अलग ही दुनिया में रहते हो। हकीकत एकदम अलग है। इन अमीर किसानों से मेरी अक्सर मुलाकात होती है। मेरे अस्पताल आते हैं। वे नशेड़ी और बिगड़ी हुई औलादें हैं जबकि असली मेहनत तो प्रवासी मजदूर या गरीब किसान करते हैं।' इन महाशय की बातों में थोड़ी सी सच्चाई हो सकती है लेकिन मैं दुनिया के बारे में हम दोनों के नजरियों में फर्क पर बात करना जरूरी समझता हूं। मेरे दोस्त के लिए दुनिया की वास्तविकता वही है जो वर्ग, सुविधा, अफवाहों, खास तरह के पूर्वाग्रहों से छनकर आए या फिर असुविधाजनक वास्तविकताओं से अनजान रहते हुए बुनी गई हो। जबकि दुनिया के बारे में मेरा नजरिया इस समझ के आधार पर है कि लोगों की कमजोरी और ताकत उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। मेरी तरह की दुनिया में रहने का विकल्प चुनने वालों के लिए उनके जीवन का उद्देश्य ही यह है कि यह दुनिया और बेहतर हो सके। भगत सिंह के शब्दों में कहें तो 'मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण से मुक्त दुनिया।'

हम उस स्थिति में नहीं कि लोगों से 24 कैरेट आदर्शवाद की अपेक्षा करें। अपनी दुनिया में हम इस बात पर जोर देते हैं कि हममें से कोई इंसान पूर्ण नहीं, आदर्श नहीं। हम सब वैसा बन जाते हैं जैसी हमारी परिस्थिति होती है। जरूरत भौतिक हकीकत को इस तरह बदलने की है कि वह हमें बेहतर भविष्य के लिए तैयार करे। पंजाब के समाज में 'खाप सभ्याचार' धीरे-धीरे गहरे तक बैठता चला गया। फिर युवाओं में नशे की समस्या पर बनी 2016 की फिल्म 'उड़ता पंजाब' ने पंजाबी युवाओं की वैसी ही मनहूस छवि बना दी। पंजाबियत के बारे में ऐसी-ऐसी बातें की जाती हैं जिनसे पंजाबियत का कहीं कोई वास्ता ही नहीं। इससे पंजाबी समाज का बड़ा नुकसान हुआ।

पंजाब का युवा कैसा है, यह देखना है तो दिल्ली की सीमा का रुख करें। ये वही पंजाबी युवा हैं जो पंजाब की सीमाओं पर दुश्मन से मुकाबला करने के लिए मोर्चा थामने के अलावा दिल्ली की सीमा पर भी डटे हुए हैं। क्यों? इसलिए कि उन्हें लगता है कि यह उनकी पहचान का, उनके अस्तित्व का सवाल है। इसी वजह से देश की निगाहें इनपर टिकी हैं।

जैसा कि इस आंदोलन में शामिल तमाम पंजाबियों के साथ बातचीत से पता चलता है, किसान आंदोलन तो पंजाब के समाज को नया जीवन देने की शुरुआत भर है। बदलाव के वाहक बने लोगों की ही जुबानी कहें तो 'यह तो नए इतिहास लिखने की शुरुआत भर है'।

(डॉ. विकास बाजपेयी दिल्ली की सीमाओं पर किसानों के लिए प्रोग्रेसिव मेडिकोज एंड साइंटिस्ट्स फोरम (पीएमएसएफ) द्वारा स्थापित एक स्वास्थ्य शिविर का हिस्सा थे। वह इस कोशिश को 'समुद्र में एक बूंद से भी कम' मानते हुए कहते हैं कि यह 'सेवा' हमारे अपने अंदर की मानवता को जिंदा रखने के लिए है।)

निश्छल सेवा: यह बच्ची सिखों की 'सेवा' परंपरा का प्रतीक है। जिस तरह दिल्ली की सीमा पर जुटे किसानों को नहीं पता होगा कि उनका आंदोलन देश के किन-किन चेहरों के लिए है, वैसे ही इस बच्ची के लिए भी रोटी पाने वालों के ये चेहरे अनजान ही होंगे। इस आंदोलन की यही ताकत है।

सभी फोटो विकास बाजपेयी

गलत के खिलाफ

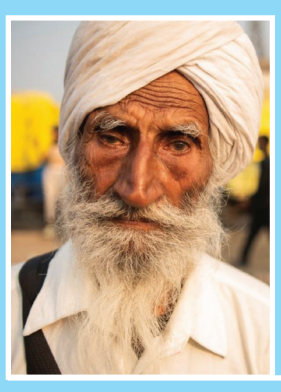

इनका नाम है शरम सिंह। 90 साल के हैं। पाकिस्तान की सीमा पर इनका गांव है और किसानों के इस आंदोलन में इसलिए शामिल हुए हैं कि उन्हें लगता है कि किसानों के साथ अन्याय हो रहा है।

कमाल का जज्बा

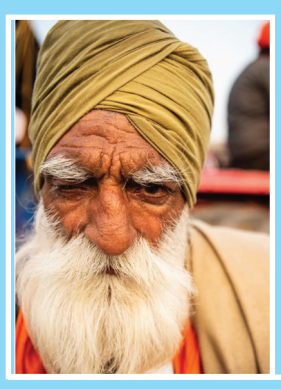

चेहरे पर खिंच आई लकीरें बताती हैं कि इनकी उम्र 90 के आसपास ही होगी। इन्हें देख लेखक के मन में आया कि इनकी उम्र तक पहुंचने के बाद इनकी आधी भी ऊर्जा रही तो वह खुद को खुशकिस्मत समझेंगे।

यहां सब बराबर

ये हैं दलबीर सिंह ढींडसा। पटाला के रहने वाले हैं और अपेक्षाकृत संपन्न किसान हैं। लेकिन यहां इस आंदोलन में कोई छोटा या बड़ा नहीं। सब की एक ही पहचान है- ये सब आंदोलनकारी हैं।

दुश्वारियां रहा करें

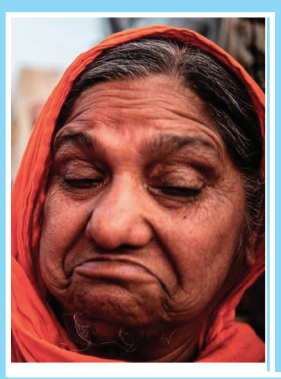

इनके भाव को देखिए। यह उस सवाल का जवाब है कि दिल्ली की हड्डियों को छेदती सर्दी और बारिश के इस मुश्किल हालात में यहां कैसे टिकी हुई हैं। जाहिर है, इनका हौसला इन सबसे टूटने वाला नहीं।

झंडा ऊंचा रहे

अखिल भारतीय किसान यूनियन से संबद्ध पंजाब में संगठन है कीर्ति किसान यूनियन। यह महिला इसकी कार्यकर्ता हैं। संगठन तीन नए किसान कानूनों को वापस लेने की मांग कर रहा है।

सजग रखवाले

हाथ में लाठी लिए मुस्तैद इस आंदोलनकारी की यह तस्वीर बता रही है कि पंजाब के किसानों ने पूरी किसान बिरादरी के भले के लिए आगे बढ़कर मोर्चा थामने और अड़े रहने की हिम्मत दिखाई है।

विश्वास से भरपूर

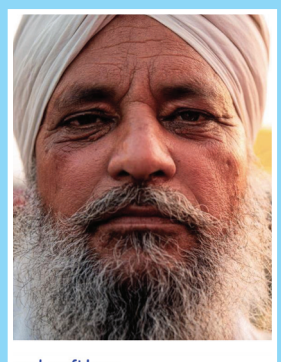

जब तक अपने, अपने लक्ष्य को लेकर भरोसा न हो, चेहरे पर यह भाव आ ही नहीं सकता। परोपकार के किसी काम को हाथ में लेने जैसा भाव। यह संतोष बड़े सरोकारी मकसद के लिए काम आने का है।

चिंता काहे की

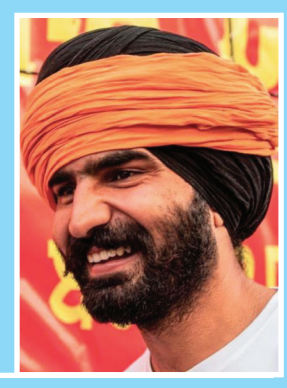

जब एक बार कुछ ठान लिया तो फिर सोच-विचार कैसा। हर स्थिति का सामना करने के हौसले के साथ आगे बढ़ते जाना है। अगर प्रयास करते रहेंगे तो परिणाम भी अपेक्षित ही निकलेगा।

युवा शक्ति

किसान आंदोलन में युवाओं की भागीदारी देखते बनती है। ये लोग नए कानूनों से होने वाली दिक्कतों को महसूस कर रहे हैं और लोगों को बता भी रहे हैं। ये है देश के रास्ता दिखाने वाले पंजाब की युवा शक्ति।

असली छवि

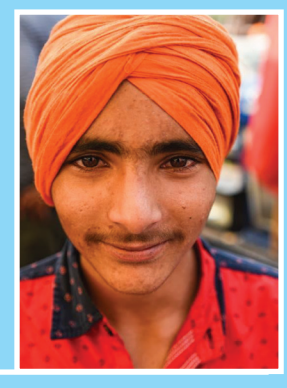

फिल्म 'उड़ता पंजाब' ने पंजाबी युवाओं की छवि खराब की है। पंजाब की युवा पीढ़ी के प्रतीक तो ये हैं। देख लें, आंदोलन स्थल पर तरह-तरह की 'सेवा' करते ये युवा ही पंजाब और पंजाबियत की पहचान हैं।

हार नहीं मानेंगे

सरकार ने खाइयां खोद रखी हैं जिससे किसान अंदर न घुस आएं। किसानों ने अब तक जबर्दस्ती तो नहीं की है लेकिन इन जैसे लोगों ने बोल्डरों से इन खाइयों को काफी हद तक भर भी दिया है।

दूरदृष्टि, पक्का इरादा

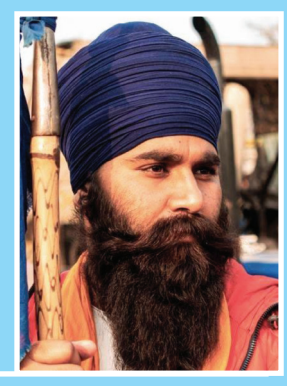

किसान आंदोलन में शामिल लोगों को अपने लक्ष्य को लेकर कोई दुविधा नहीं। वे शुरू से ही तीनों नए कानूनों को वापस लेने की बात पर अड़े हैं। इतने दिनों बाद भी उनके रुख में कोई अंतर नहीं है।

सेवा का भाव

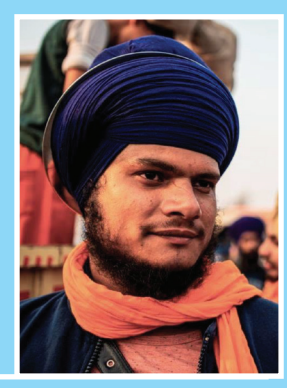

दिल्ली की सीमा पर जुटे किसान आंदोलनकारियों के सैलाब में एक वर्ग ऐसा भी है जो निस्वार्थ भाव से वहां जुटे किसानों की सेवा कर रह हैं। जिन्हें जरूरत है, उनके खाने-पीने से ओढ़ने-बिछाने तक सारा इंतजाम।

समझो आ गया

वह सेना में काम कर चुके हैं। आवाज में वही फौज वाला जीवन और जोश। छूटते ही कहा, बस जी, पहुंच ही गया मोर्चा थामने। सही है, देश की सीमा पर मोर्चा थाम चुका यह फौजी अब दिल्ली की सीमा पर डट गया है।

*प्रकाशक: **पवन कुमार बंसल**; संपादक: **ज़फ़र आग़ा**; **पवन कुमार बंसल द्वारा दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड,** हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली- 11002 की ओर से *प्रकाशित एवं मुद्रित। दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड, हेराल्ड हाउस, 5-ए, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 और दि इंडियन एक्सप्रेस (प्रा.) लिमिटेड प्रेस, ए-8, सेक्टर-7, नोएडा- 201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित।
* श्री मोतीलाल वोरा, *प्रकाशक एवं मुद्रक के 21/12/2020 को दुखद एवं असमय आकस्मिक निधन के कारण कंपनी ने श्री पवन कुमार बंसल को प्रकाशन का *प्रकाशक एवं मुद्रक नियुक्त किया है और उनकी औपचारिक नियुक्ति की आवश्यक प्रक्रिया शुरू कर दी गई है जो अभी चल रही है।

हिंदू इलाकों में मुसलमानों को जगह न देने का कानून

गुजरात में इसकी पक्की व्यवस्था कि अल्पसंख्यक सब जगह न खरीद सकें जमीन-मकान

आकार पटेल

वह 1960 का दशक था जब अमेरिका में अलगाव को कानूनी रूप से खत्म कर देने के बाद सरकार ने फेयर हाउसिंग एक्ट जैसे कानून बनाए ताकि जातियों का परस्पर दुराव खत्म हो, उनमें मेलजोल बढ़े। तब अमेरिका में संपत्तियों की खरीद-बिक्री में जाति-आधारित भेदभाव था और इस कानून से इसे ही खत्म किया गया था। लेकिन पूरे गुजरात में, इसके सभी शहरों में सरकार ने इसके ठीक उलट काम किया है।

मुस्लिमों को जान-बूझकर अलग बस्तियों में रहने के लिए मजबूर कर दिया गया है और वह भी एक कानून के जरिये। इस कानून का नाम है- गुजरात प्रोहिबिशन ऑफ ट्रांसफर ऑफ इम्मूवेबल प्रॉपर्टी एंड प्रोविजन फॉर प्रोटेक्शन ऑफ टीनेंट्स फ्रॉम एविक्शन फ्रॉम प्रेमिसेज इन डिस्टर्ब्ड एरियाज एक्ट। इस लंबे नाम वाले कानून का मकसद यही था कि अशांत क्षेत्रों में किराये पर रह रहे लोगों को डरा-धमकाकर घर खाली कराने की संभावनाओं को वैधानिक तरीके से खत्म किया जाए। शुरू में यह कानून अस्थायी था और इसे सांप्रदायिक हिंसा के दौरान कमजोर लोगों को जबरन बेदखली से बचाने के लिए लाया गया था। लेकिन हुआ इसका उल्टा। इस कानून के लागू होने के पैंतीस साल और 2002 के दंगों के अठारह साल बाद यह कानून उन शहरों में भी लागू है जहां किसी तरह की कोई हिंसा नहीं हुई। हर तीन साल पर 30 जून को इस कानून को बढ़ाया जाता रहा। 30 जून, 2021 को फिर इसे बढ़ाने की बारी आएगी।

वर्ष 2009 में मोदी सरकार ने इस अधिनियम में संशोधन कर कलेक्टर को यह अधिकार दे दिया कि वह स्वेच्छा से जांच कर संपत्ति को अपने कब्जे में ले लें। जुलाई, 2019 में इस कानून में एक और बदलाव किया गया जिसके बाद अब इस बात से भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि दोनों पक्षों ने बिना किसी दबाव के स्वेच्छा से संपत्ति की खरीद-बिक्री की और खरीदार ने उसके बदले संपत्ति मालिक को उचित कीमत का भुगतान किया।

किसी भी संपत्ति की बिक्री को कलेक्टर रोक सकता है अगर उसे अपने विवेक से महसूस हो है कि उस बिक्री के कारण 'जनसांख्यिकी संतुलन में गड़बड़ी' या 'किसी समुदाय के लोगों के अनुचित जमावड़े' या 'ध्रुवीकरण' की संभावना है। जब यह कानून लाया गया था तब बिना मंजूरी संपत्ति बेचने की सजा छह माह की जेल थी जिसे बढ़ाकर छह साल कर दिया गया।

'काउंटर करेंट्स' के 10 अगस्त,2019 के अंक में 'डिस्टर्ब एरियाज एक्टः अ टूल टु फ्यूल द कम्युनल डिवाइड' लेख में अमन मंसूरी बताते हैं कि 1985 में जब यह कानून बना, 'तब दंगों के दौरान भू-माफिया लोगों की असुरक्षा की भावना का फायदा उठाकर उन्हें सस्ते में संपत्ति बेचने के लिए मजबूर किया करते थे। ऐसे शोषण से लोगों को बचाने के लिए यह कानून बनाया गया था।'

दो सामाजिक कार्यकर्ताओं- निशांत वर्मा और दानिश कुरैशी ने मई, 2018 में गुजरात हाईकोर्ट में इस कानून की वैधानिकता को चुनौती दी। याचिकाकर्ताओं ने राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो (एनसीआरबी) को दी गई गुजरात सरकार की उन रिपोर्टों को उद्धृत किया जिसमें लगातार कहा गया है कि गुजरात में सांप्रदायिक हिंसा की दर अन्य राज्यों से ज्यादा नहीं। सरकार अपनी विरोधाभासी बातों में खुद ही घिर जाती है क्योंकि दूसरी ओर वह अशांत क्षेत्र कानून के दायरे में और इलाकों को लाती रही। कार्यकर्ताओं ने स्वाभाविक ही यह सवाल उठाया कि अगर एनसीआरबी की रिपोर्ट सही है और गुजरात में सांप्रदायिक सौहार्द कायम है तो अशांत क्षेत्र अधिनियम की जरूरत ही क्या थी? मैंने इस मामले में कुरैशी से बात की तो उन्होंने कहा कि इस आधार पर बिक्री की अनुमति नहीं दी गई कि वह क्षेत्र सांप्रदायिक हिंसा के लिए संवेदनशील है, हालांकि इस तरह की कोई एफआईआर दर्ज नहीं की गई थी जो बताती हो कि इलाका हिंसा के लिए संवेदनशील था। कुरैशी ने हताशा के साथ कहा कि कानूनी तौर पर ऐसी स्थिति बना दी गई है कि यहां विदेशी तक संपत्ति खरीद सकते हैं लेकिन गुजराती मुसलमान नहीं।

जब भाजपा सरकार ने 2019 में इस कानून

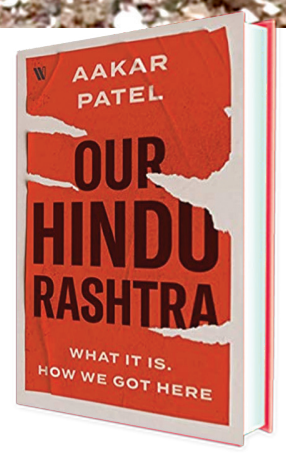

में बदलाव किए तो कांग्रेस विधायक इमरान खेडावाला ने मुसलमानों को निशाना बनाने के लिए इसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि यह विडंबना ही है कि भाजपा कश्मीर में पूरे देश के लोगों को जमीन खरीदने का अधिकार देने की बात करती है जबकि गुजरात के लोग अपने ही राज्य में जमीन नहीं खरीद सकते। यह दोहरा मानदंड क्यों? ऐसा क्यों है कि एक ओर तो भाजपा दावा करती है कि उसने राज्य में शांति बहाल कर दी है और वहीं वह आधिकारिक तौर पर यह बताती रही कि गुजरात के शहर अशांत हैं? 39 साल के बाद भी यह कानून क्यों जरूरी है? इसके साथ ही कुरैशी कहते हैं कि इस कानून ने मुसलमानों के संवैधानिक अधिकारों का हनन किया है।

***

इस कानून में बदलाव और तमाम इलाकों में इसे लागू करने का काम भाजपा शासन के दौरान हुआ। 2017 और 2018 में भाजपा ने सूरत के उन हिस्सों को अधिसूचित किया जहां 2002 के दंगों के दौरान भी बड़े पैमाने पर कोई हिंसा नहीं हुई थी। भरूच को इसलिए इस कानून के दायरे में लाया गया क्योंकि भाजपा विधायक इसकी मांग कर रहे थे।

अगस्त, 2019 तक अकेले अहमदाबाद के 770 हिस्से ऐसे थे जिन्हें अशांत घोषित किया जा चुका था। 25 फरवरी, 2020 को खंभात शहर में मुसलमानों के खिलाफ हिंसा के बाद अशांत क्षेत्र कानून लागू कर दिया गया। 'फर्स्ट पोस्ट' की रिपोर्ट बताती है यह फैसला इसलिए लिया गया क्योंकि हिंदू जागरण मंच द्वारा इकट्ठा किए गए 5,000 से अधिक लोगों की भीड़ को संबोधित करते हुए भाजपा नेताओं ने सांप्रदायिक नारे लगाए और सभी मुस्लिम परिवारों को खंभात से निकाल बाहर करने का आह्वान किया।

यह कानून अभी राज्य के तीन सबसे बड़े शहरों- अहमदाबाद, वडोदरा और सूरत के बड़े हिस्सों में लागू है। इसके अलावा भी भरूच, कपडवंज, आणंद और गोधरा-जैसे तमाम शहरों में भी लागू है। ये ऐसी जगहें हैं जहां मुसलमानों की सघन आबादी है और यह कानून उन्हें स्थायी तौर पर इन बस्तियों में अलग-थलग रहने को मजबूर करता है। 4 जून, 2020 को सरकार ने अहमदाबाद के वटवा और नारोल थानों के तमाम इलाकों में इसे लागू कर दिया। मुख्यमंत्री विजय रूपानी ने यह घोषणा करते हुए कहा कि यह गुजरात के लोगों की 'सुरक्षा' के लिए है। गौर करने वाली बात है कि यह फैसला कैसे हुआ। समाचार एजेंसी पीटीआई ने 22 अगस्त, 2020 को रिपोर्ट दी कि भाजपा विधायक मनीषा वकील की मांग के बाद वड़ोदरा के तीन और मोहल्लों में यह कानून लागू हुआ। जबकि गोधरा दंगों के बाद अठारह वर्षों में इनमें से किसी भी इलाके में सांप्रदायिक हिंसा नहीं हुई।

18 मार्च, 2020 को इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया कि गुजरात हाईकोर्ट ने वडोदरा के एक अधिकारी के उस आदेश को खारिज कर दिया था जिसमें उन्होंने दो भाइयों- दिनेश और दीपक मोदी द्वारा अपनी दुकान को ओ. एजाज़ुद्दीन ढोलकवाला और इज़्ज़त हुसैन असगर अली टिनवाला को बेचने की अनुमति से इनकार कर दिया था। इस बिक्री के कागजात को सब-रजिस्ट्रार के सामने प्रस्तुत किया गया जिन्होंने मामले की पुलिस जांच कराने के बाद पड़ोसियों के बयानों के आधार पर टिप्पणी की कि इससे कानून-व्यवस्था के लिए विपरीत स्थिति पैदा होने की आशंका है। डिप्टी पुलिस कमिश्नर की ओर से भी ऐसी ही रिपोर्ट आने के बाद डिप्टी कलेक्टर ने संपत्ति के हस्तांतरण का आवेदन नामंजूर कर दिया।

इस आदेश को पलटने वाले जज ने टिप्पणी की कि 'यह निर्विवाद है कि विचाराधीन संपत्ति उचित मूल्य पर और मुक्त सहमति से बेची गई थी। ऐसे में पड़ोसियों की भूमिका अप्रासंगिक हो जाती है।'

***

लेकिन पड़ोसी इस समस्या का हिस्सा जरूर हैं। 22 सितंबर, 2019 को इंडियन एक्सप्रेस ने खबर दी जिसमें बताया गया कि गीता गोराडिया द्वारा एक प्रसिद्ध व्यवसायी और शिक्षाविद् फैजल फजलानी को 6 करोड़ रुपये में बंगले की बिक्री पर पचास लोगों की आपत्ति के बाद वडोदरा की जिला कलेक्टर और मजिस्ट्रेट शालिनी अग्रवाल ने रोक लगा दी। दिसंबर में गुजरात हाईकोर्ट ने उनके फैसले को गलत बताते हुए बिक्री की अनुमति दी।

लेकिन एक बुरी सरकार और ध्रुवीकृत समाज के खिलाफ इस तरह के उदाहरण दुर्लभ ही हैं। अधिकारी अक्सर किसी बिक्री पर लंबे अरसे तक कोई फैसला नहीं करते जिससे खरीदने और बेचने वाले- दोनों की दिलचस्पी खत्म हो जाती है। अक्सर पड़ोसी ही इतना दबाव बना देते हैं कि खरीदार और विक्रेता अपने आप पीछे हट जाते हैं। इसके अलावा हिंदू कहते हैं कि अगर कोई मुसलमान उनके पड़ोस में आ जाएगा तो संपत्ति की कीमत गिर जाएगी।

(वेस्टलैंड द्वारा प्रकाशित आकार पटेल की पुस्तक "आवर हिंदू राष्ट्र" के अंश)

मुस्लिम तुष्टिकरण का मिथक

पाकिस्तान में उच्च पदों और सत्ता से अल्पसंख्यकों को प्रत्यक्ष रूप से दूर रखने और भारत में अप्रत्यक्ष रूप से अलग-थलग रखने में कोई बड़ा अंतर नहीं। दोनों ही मामलों में अल्पसंख्यकों का 'बहिष्कार' वास्तविक है। फिर भी भारत में मुसलमानों पर 'तुष्टीकरण' का फायदा उठाने का आरोप लगता है।

- भारत में अनुसूचित जाति आबादी 16 प्रतिशत और उसके लिए लोकसभा में 84 सीटें आरक्षित हैं। अनुसूचित जनजाति की आबादी 8 प्रतिशत और उसके लिए 47 सीटें हैं।
- 2019 में लोकसभा के लिए 27 मुस्लिम चुने गए। आबादी के लिहाज से मुसलमानों की 74 सीटें होनी चाहिए थी। लेकिन उन्हें 49 (1980 में) से अधिक सीट कभी नहीं मिली। उनका औसत 28 सीटों का ही है।
- भाजपा के 303 लोकसभा सदस्यों में से एक भी मुस्लिम नहीं। पिछली बार 282 सीटें थीं और तब भी कोई मुसलमान नहीं था।
- यूपी में एक हिंदू के पास ही अल्पसंख्यक मामलों और वक्फ का प्रभाग है।
- उत्तर प्रदेश में भाजपा के 307 विधायक हैं, जिसमें कोई मुस्लिम नहीं। यूपी में 4 करोड़ से अधिक मुस्लिम हैं और यह लोकतांत्रिक दुनिया में बिना प्रतिनिधित्व वाली सबसे बड़ी आबादी है।
- सच्चर रिपोर्ट के मुताबिक कुछ बैंकों ने कुछ मुस्लिम आबादी वाले क्षेत्रों को "निगेटिव जियोग्राफिकल जोन्स" घोषित कर रखा है जहां बैंक ऋण वगैरह आसानी से नहीं मिलता।
- 1969 से आज तक 'रॉ' में काम करने वालों की संख्या लगभग 10,000 है लेकिन इसने किसी भी मुस्लिम अधिकारी को भर्ती करने से परहेज किया है। न ही रॉ की शाखा राष्ट्रीय तकनीकी अनुसंधान संगठन (एनटीआरओ) में ही मुसलमानों को रखा जाता है।

सुरक्षा और खुफिया एजेंसियों ने मुसलमानों की भर्ती से परहेज किया है, उन्हें जन्मजात 'देशद्रोही' माना है। आईबी में नरसिंह राव के कार्यकाल के दौरान मुसलमानों की भर्ती शुरू हुई और ब्यूरो कश्मीर में आतंकवाद, पाक प्रायोजित दुष्प्रचार और घुसपैठ से मुकाबले में मुसलमानों की भूमिका को स्वीकारता भी है। अटल कार्यकाल के दौरान जब खुफिया एजेंसियों को नया रूप दिया जा रहा था, एक वरिष्ठ अधिकारी ने तत्कालीन सुरक्षा सलाहकार बृजेश मिश्रा से संपर्क किया। वह अधिकारी कहते हैं, "मैंने उनसे पूछा कि क्या हम गठित होने जा रहे संगठनों में मुसलमानों को शामिल कर सकते हैं? उन्होंने (बृजेश मिश्रा) कहा कि वह इसपर विचार करेंगे लेकिन उसके बाद उन्होंने इसपर कुछ नहीं कहा।"

हाथ बढ़ायें, हमारा हौसला मज़बूत करें...
100 रुपये या अधिक राशि का योगदान कर सहयोग करें

ऑनलाइन योगदान करें- https://www.navjivanindia.com/contribute

आदिवासियों को उनकी धार्मिक पहचान क्यों नहीं दे रही मोदी सरकार

आजादी के बाद 1951 में जब पहली बार जनगणना हुई थी, तो आदिवासियों के लिए धर्म के कॉलम में नौवें नंबर पर 'ट्राइब' उपलब्ध था। इसे बाद में समाप्त कर दिया गया। जनगणना हो या कोई अन्य सरकारी फॉर्म, धर्म के लिए सिर्फ छह ऑप्शन दिए जाते हैं: हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिख। 2011 से पहले धर्म के कॉलम में सातवां कॉलम अन्य का हुआ करता था। कई लोग उसे ही चुन लेते थे। पर अब उसे भी हटा दिया गया है। आदिवासी संगठनों की मांग है कि उन्हें पहले की तरह मूलनिवासी का विकल्प चुनने की सुविधा दी जानी चाहिए।

कुमार राणा

प्रतीकात्मक तस्वीर

लगभग दो माह पूरा होने को हैं, पर केंद्र सरकार ने झारखंड विधानसभा से पारित उस प्रस्ताव को मंजूरी नहीं दी है जिसमें सरना को जनगणना में अलग धर्म की मान्यता देने का अनुरोध किया गया है। जनगणना का काम इसी साल होना है।

संविधान के 25 से 28 अनुच्छेद धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार देते हैं। लेकिन जनगणना कार्य में आदिवासियों को अपने धार्मिक व्यवहारों की पहचान कराने की सुविधा नहीं है। ब्रिटिश शासन के समय 1871 की जनगणना से लेकर आजादी के बाद 1951 तक आदिवासियों के लिए अलग धर्म कोड की व्यवस्था थी। तब अलग-अलग जनगणना के वक्त इन्हें अलग-अलग नामों से संबोधित किया गया। आजादी के बाद इन्हें अनुसूचित जाति (एसटी) कहा गया। आजादी के बाद 1951 में जब पहली बार जनगणना हुई थी, तो आदिवासियों के लिए धर्म के कॉलम में नौवें नंबर पर 'ट्राइब' उपलब्ध था। इसे बाद में समाप्त कर दिया गया। जनगणना हो या कोई अन्य सरकारी फॉर्म, धर्म के लिए सिर्फ छह ऑप्शन दिए जाते हैं: हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिख। 2011 से पहले धर्म के कॉलम में सातवां कॉलम अन्य का हुआ करता था। कई लोग उसे ही चुन लेते थे। पर अब उसे भी हटा दिया गया है। आदिवासी संगठनों की मांग है कि उन्हें पहले की तरह मूलनिवासी (एबऑरिजिनल) का विकल्प चुनने की सुविधा दी जानी चाहिए।

दरअसल, जनगणना या सरकारी फॉर्म में इस तरह धार्मिक पहचान को वर्गीकृत करना न सिर्फ संविधान बल्कि मूलनिवासी लोगों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र की घोषणा के भी विपरीत है। इस घोषणा की धारा 2 में मूलनिवासी लोगों के अधिकारों, खास तौर से उनके मूलनिवासी होने के आधार या पहचान के क्रम में उनके साथ किसी किस्म के भेदभाव से मुक्त होने होने की बात कही गई है। इसी तरह धारा 7 में किसी तरह जबरिया शामिल किए जाने या उनकी संस्कृति को नष्ट करने के प्रयास से उन्हें बचाने की बात की गई है।

वैसे तो झारखंड विधानसभा का प्रस्ताव भी इस तरह के भेदभाव से इन आदिवासियों को पूरी तरह दूर नहीं करता लेकिन हां, वह कुछ अर्थों में इस भेदभाव को कम करने की दिशा में उठाया गया कदम जरूर है। दरअसल, आदिवासी सिर्फ सरना धर्म के अनुयायी नहीं हैं। झारखंड, ओडिशा, बंगाल और बिहार में आदिवासी समुदाय का बड़ा तबका खुद को सरना धर्म का अनुयायी मानता है। वे प्रकृति की प्रार्थना करते हैं। उनका विश्वास 'जल, जंगल, जमीन' पर है। ये वन क्षेत्रों की रक्षा करने में विश्वास करते हैं और पेड़-पौधों और पहाड़ियों की पूजा करते हैं। वैसे, एक मोटे आकलन के मुताबिक, देश भर में आदिवासियों के अंदर कुल 83 धार्मिक रीतियां हैं। इन सबकी अपनी मान्यताएं, रीति-रिवाज, देवी-देवता, शादी-ब्याह, जन्म-मरण संस्कार आदि हैं। इन्हीं कारणों से गोंडवाना महासभा ने 1950 के पहले से ही आदिवासियों के लिए कोया पूनेम धर्म की मांग शुरू की थी। इसी तरह एक वर्ग आदि धर्म की पहचान की मांग करता रहा है।

जनगणना को लेकर कुछ बातें ध्यान में रखने की है। जनगणना के बाद सरकार ने 1991 से विभिन्न धार्मिक समूहों से जुड़े सीमित सामाजिक-आर्थिक आंकड़े जारी करना शुरू किया। इसके आधार पर शोधकर्ताओं को इस मिथ को समाप्त करने में मदद मिली कि 'मुसलमान चार बीवियां रखते हैं और इस तरह हिंदुओं की तुलना में कहीं ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं।' शोधकर्ताओं ने बताया कि आबादी वृद्धि किसी धार्मिक पृष्ठभूमि की तुलना में सामाजिक-आर्थिक स्तर पर निर्भर करती है। यह बात दूसरी है कि आंशिक आंकड़ों पर रचे गए झूठ को यकीन के तौर पर परोसा जाता है। लेकिन इसके साथ ही एक और बात ध्यान देने की है। आदिवासियों के उनके मूल धर्म दर्ज न कराने देने का खामियाजा उन्हें कई तरह से भुगतना पड़ रहा है। उन्हें अपनी ही जमीन से बेदखल होकर असम, उत्तर बंगाल और अन्य जगहों पर जाना पड़ रहा है और प्रकृति, अपनी भाषा और अपने इतिहास से वंचित होना पड़ रहा है।

दिक्कत यह भी है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इस बात पर जोर देता रहा है कि आदिवासी समुदाय हिंदू धर्म का हिस्सा है। वह आदिवासियों को वनवासी कहने पर भी जोर देता रहा है, हालांकि इसके विरोध को देखते हुए संघ प्रमुख मोहन भागवत को पिछले साल यह तक कहना पड़ा कि हमें भी उन्हें आदिवासी कहने में आपत्ति नहीं है।

SUBSCRIBE

NATIONAL HERALD ON SUNDAY

NH Bonanza Offer
220 Issues
Total Price: Rs. 4000
You save **Rs 440**

NH Privilege Plus Offer
105 Issues
Total Price: Rs. 2000
You save **Rs 100**

संडे नवजीवन

Sunday Navjivan Bonanza Offer
300 Issues
Total Price: Rs. 4000
You save **Rs 500**

Sunday Navjivan Mega Offer
145 Issues
Total Price: Rs. 2000
You save **Rs 175**

Mega Privilege Plus Offer
155 Issues of National Herald on Sunday & 155 Issues of संडे नवजीवन
Total Price: Rs. 5000 (You save **Rs 425**)

For your copy of your favourite Newspaper The National Herald on Sunday and Sunday Navjivan (in Hindi) ask your newspaper vendor or login to **www.nationalheraldindia.com/subscribe** to subscribe or mail to circulation **circulation.ajl@nationalheraldindia.com** or write to subscription cell **The Associated Journals Limited, Herald House, 5-A, Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi -110002** or call **011-47636321/24**

यह रुकावट करोड़ों नेहा के सामने, समाज को ढूंढ़ने होंगे इनके सपनों को पंख देने के प्रयास के तरीके

आसिया फारूकी

नेहा के पिता जी परेशान इधर-उधर घूम रहे थे। नेहा मां के पास जाकर लिपट गई। मैं बाहर से कुछ फल लेकर उनके पास गई और बोली: 'भाई साहब! अगर आपकी ही तरह सब अपनी बेटियों को घर में बैठा लें तो किसी स्कूल में लेडी टीचर, किसी अस्पताल में लेडी डॉक्टर या नर्स मिल पाएगी क्या?' मेरी बात सुनकर उनकी गर्दन झुक गई। उनकी आंखों में पछतावा था। नेहा का हाथ मेरे हाथ में पकड़ाते हुए बोले: 'आप सही हो, मैडम जी। आपने मेरी आंखें खोल दी। अब मेरी नेहा पढ़ेगी और डॉक्टर भी बनेगी। बस, आप साथ देना।' यह सुनकर नेहा मुझसे लिपट गई। उसकी मुट्ठी में एक सपना आकार लेने लगा। उसे स्कूल आता देखकर अन्य लड़कियां पढ़ने के लिए स्कूल आने लगीं।

प्रतीकात्मक तस्वीर

विद्यालय का वह पहला दिन आज भी आंखों के सामने कुछ इस तरह आ जाता है, मानो कल की ही बात हो। मैं उस खाली बरामदे में क्या ढूंढ़ रही थी। वीरान-सा स्कूल जहां न बच्चों का शोर, न ही पढ़ाई का कोई माहौल। इधर-उधर से झांकते कुछ बालक। हां, सिर्फ बालक थे। काफी तलाशने के बाद भी वहां कोई बालिका नहीं दिखी। बहुत देर बाद एक नन्ही बच्ची मुझे देखती दिखी। उसका नाम था आसमा। उसकी मां शायद रूकूल में ही रसोइया थी। बुलाकर पूछने पर पता चला कि वह भी यहां नहीं पढ़ती, उसने कहीं और एडमीशन लिया हुआ था। मां के साथ कभी-कभी आ जाती है। स्कूल परिसर में चारों ओर नजर दौड़ाई तो बाहरी लड़कों का खेलना, आना-जाना देखकर समझ गई कि यहां का परिसर अराजक तत्वों के हाथों में है। तभी रसोइया अनीता बड़े ही बेमन से बच्चों को जमीन पर बैठाकर खाना देने लगी। ये वही गिनती के आठ-दस बालक थे जिनके चेहरे के भाव बता रहे थे कि यही उनकी दिनचर्या है।

बिना बालिकाओं का खाली-खाली स्कूल मुझे किसी तरह भी रास नहीं आ रहा था। इधर-उधर नजर दौड़ाई तो देखा कि छत पर कुछ बच्चियां इक्कड़-दुक्कड़ खेल रही हैं। इशारे से बुलाया तो डरते-डरते एक-दो नीचे आईं। थोड़े प्यार-दुलार से उनसे बात की तो पता चला कि यहां न तो अच्छी पढ़ाई होती है, न ही कोई खेल खेलाया जाता है और न ही हमारी कोई दोस्त यहां पढ़ती है। तभी मैं बिना सोचे बोल पड़ी, 'अच्छा अगर खेल खेलाया जाने लगे तो तुम सब आओगी?' पीछे से आंखों में गहरा काजल लगाए चांदनी ने कहा: हमारी दोस्त खुशबू, नेहा, आरजू आएंगी, तो हम भी आ जाएंगे।

मैं बस निकल पड़ी रसोइये के साथ। तो देखा, कई घरों में एक-जैसी समस्या। पहली, ड्रॉपआउट बच्चियां जो घर के कामों में हाथ बटाने की वजह से नहीं आ पा रहीं थीं। दूसरी, पर्दा प्रथा और अज्ञानता। बस, मैं दिन-रात स्कूल को बदलने में लग गई। बालिकाओं के लिए शौचालय सही करवाया। खेलने के लिए ढेरों सामान लेकर आई। डोरीमोन, शुजुका, शिनशान, नोबिता, मोटू-पतलू- सभी स्कूल में सज गए।

एक दिन स्कूटी से घर जाते वक्त रास्ते में प्यारी-सी बच्ची- सना अपने दो छोटे भाई-बहनों के साथ मिली। गाड़ी रोककर बात की तो पता चला कि दो साल से ड्रॉपआउट है। खेतों में मां के साथ काम करने जाती है। मुझे बड़ा तरस आया। उससे बातें करके समझ गई कि वह पढ़ाई करना चाहती है और बड़ी जिम्मेदार भी है, तब ही दोनों भाई-बहनों को खुद खेलने की उम्र में गोद में संभाले है। अगले दिन सना की मां से मिलने गई। उनकी बातों से समझ गई कि घर में पिताजी की बड़ी दहशत है। मां उनकी मर्जी के बिना सना को चाह कर भी स्कूल नहीं भेज पा रही थीं। मेरे काफी समझाने पर छोटे भाई-बहनों का एडमीशन करवाने आईं। पास बैठाकर उनको काफी देर तक समझाती रही। वह समझ तो रही थी, पर शौहर से मजबूर थीं।

अगले दिन सना अपने भाई-बहनों को छोड़ने गेट तक आई। मेरे बुलाने पर अंदर आ गई। स्कूल के बाकी बच्चे ट्रेन-ट्रेन खेल रहे थे। सना को भी दिल किया। मैंने बड़े प्यार से उसे बुलाकर खेल में शामिल कर लिया। अब वह बच्चों के साथ खेलने आ जाया करती, पर थोड़ी देर में ही जाने को कहती। फिर एक बार कई दिनों तक सना स्कूल में नहीं दिखी। उसके भाई-बहनों से पता चला कि वह यहां आकर खेलती थी, इसलिए उसके पापा ने पीटा है। बस, अब मुझ से नहीं रुका गया। उनके पिता जी के पास ढूंढ़ते-ढूंढते उनकी दुकान पर पहुंची और काफी समझाया। कुछ देर मेरी सुनने के बाद वही जवाबः 'हम इनका पढ़ाई, इनका कमाई कराई और ई जाके अपना सारा कमाई ससुराल में दे दें।' काफी प्रयासों के बाद सना स्कूल आने लगी। उसमें काफी शौक था। पढ़ाई, डांस, खेलकूद में वह आगे रहती। घर से काफी रुकावटों के बाद भी ब्लॉक और जनपद पर विजयी हो जाती, पर मंडल तक जाने की घर से इजाजत न मिल पाती।

सना सबसे ज्यादा नेहा के साथ उठती-बैठती थी। वही नेहा जो उस दिन स्कूल के सामने के घर की छत पर खड़ी बड़ी हसरत से मुझे देखती रही थी। बड़े प्रयासों से उसका स्कूल आना शुरू करवा पाई थी। मां की बीमारी और पापा का पुराने ख्यालों का होना नेहा को स्कूल से ड्रॉपआउट करवा चुका था। मुझे याद हैं उसके पिता के वे कठोर शब्द जब उनसे नेहा के लिए बात करने गई थी। उनका जवाब था कि 'वह काम-चोर है। काम-चोरी की वजह से स्कूल से भाग जाती है।' बेचारी नेहा खाना बनाकर, बर्तन मांजकर कुछ देर से स्कूल आ जाती। उस मासूम बच्ची पर जिम्मेदारियों का बोझ देख मैं उसको मजबूत बनाना चाहती थी। नेहा, सना और बाकी बच्चियों को पढ़ने और आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करती। कविता, कहानी, लेख सुनाती। लाइब्रेरी में उन्हें पढ़ाती। योग, एरोबिक, टेडी डांस, लेजिम, डंबल, पीटी। इसके साथ-ही-साथ ढोलक, लोकगीत, सांस्कृतिक कार्यक्रम, सिलाई-कढ़ाई आदि के प्रशिक्षण भी। बच्चों के चेहरों पर मुस्कान बिखरने लगी थी।

विद्यालय का वार्षिकोत्सव करीब था। नेहा डांस में सबसे अच्छी थी। हम सरस्वती वंदना की तैयारी में लगे थे। एक डांस टीचर भी उन्हें सिखाने के लिए लगा लिया था। बच्चे काफी अच्छा कर रहे थे। नेहा में आत्मविश्वास जाग रहा था। उसी बीच किसी ने उसके पिता जी से शिकायत कर दी क्योंकि वह डांस के खिलाफ थे। नेहा पर उनकी सख्ती शुरू हो गई। उत्सव को कुछ ही दिन तो बचे थे और नेहा ने स्कूल आना बंद कर दिया। हमारा तो प्रोग्राम ही नेहा के इर्द-गिर्द था। अब क्या करूं? कैसे उसे बुलाऊं? सना और नेहा-जैसी काफी बेटियों के अभिभावकों ने उन्हें घर में कैद कर रखा था। इन्हें समझाना काफी मुश्किल था। जब सोच ही यही कि सरकारी स्कूल है, तो पढ़ा रहे हैं; डांस-वांस कुछ न कराओ इनसे; शादी करके खाना ही तो पकाना है।

नेहा को घर बुलाने भेजा तो पता चला उसकी मां अस्पताल में हैं। नेहा का रोल अब खुशबू को दिया जा चुका था। नेहा के आने की उम्मीद कम थी। तभी पता चला कि नेहा के पिताजी नेहा की मां के ऑपरेशन के लिए इस बात पर लड़ गए कि वह ऑपरेशन लेडी डॉक्टर से ही करवाना चाहते हैं जो उस अस्पताल में नहीं है और इतना पैसा भी नहीं था कि दूसरे अस्पताल में जा सकें। बस, फिर क्या था, मैं स्कूल से निकली। नेहा को उसके घर से बुलाकर स्कूटी पर बैठाकर अस्पताल आ गई। नेहा के पिता जी परेशान इधर-उधर घूम रहे थे। नेहा मां के पास जाकर लिपट गई। मैं बाहर से कुछ फल लेकर उनके पास गई और बोलीः 'भाई साहब! अगर आपकी ही तरह सब अपनी बेटियों को घर में बैठा लें तो किसी स्कूल में लेडी टीचर, किसी अस्पताल में लेडी डॉक्टर या नर्स मिल पाएगी क्या?' मेरी बात सुनकर उनकी गर्दन झुक गई। उनकी आंखों में पछतावा था। नेहा का हाथ मेरे हाथ में पकड़ाते हुए बोलेः 'आप सही हो, मैडम जी। आपने मेरी आंखें खोल दी। अब मेरी नेहा पढ़ेगी और डॉक्टर भी बनेगी। बस, आप साथ देना।' यह सुनकर नेहा मुझसे लिपट गई। उसकी मुट्ठी में एक सपना आकार लेने लगा। उसे स्कूल आता देखकर अन्य लड़कियां पढ़ने के लिए स्कूल आने लगीं।

(सप्रेस)

(लेखिका फतेहपुर,उत्तर प्रदेश के प्राथमिक विद्यालय में राज्य अध्यापक पुरस्कार प्राप्त शिक्षिका हैं।)

हमें मेडिकल शिक्षा में भी काफी बदलाव की जरूरत है

डॉ. आमोद गुप्ता
एमेरिटस प्रोफेसर, पीजीआईएमईआर, चंडीगढ़

प्रतीकात्मक तस्वीर

आपदाएं बिना बताए आती हैं। यह बात कोविड-19 के इस दौर ने हमें फिर सिखाई है। इसमें शक नहीं कि डॉक्टरों ने इस कठिन समय से उबरने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई लेकिन यह भी देखने की जरूरत है कि हम आम तौर पर कैसे डॉक्टर तैयार कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि हम रोबोटिक डॉक्टर पैदा कर रहे हैं। कई बार सवाल पूछने वाले रोगियों के प्रति डॉक्टर और पैरामेडिकल स्टाफ में सहिष्णुता बिल्कुल खत्म ही हो जाती है। आम तौर पर कह दिया जाता है कि 'तुम डॉक्टर हो या मैं डॉक्टर हूं?' या 'क्या तुम मुझसे बेहतर समझते हो?' डॉक्टर आम आदमी के दर्द को महसूस करें, इसके लिए उन्हें दी जाने वाली शिक्षा-व्यवस्था बदलनी होगी।

कोविड-19 जैसी वैश्विक महामारी हमें बताती हैं कि आपदाएं बिना सूचना दिए आती हैं और ऐसे में, हमें राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन बल (एनडीआरएफ) टीमों के अतिरिक्त ऐसी भी टीमें तैयार करने की जरूरत है जो मुकाबला करने के लिए तैयार रहें। इन पैरामेडिक लोगों को आपातकाल में गंभीर रोगियों को अस्पताल ले जाए जाने से पहले उनकी मदद करने, मृतप्राय लोगों को होश में लाने, पल्स और बीपी को मापने, जरूरत होने पर दिल की गति को सामान्य करने का प्रयास करने, ऑक्सीजन देने की शुरुआत करने, फ्लुइड चढ़ाने, घावों को बचाते हुए किसी घायल व्यक्ति को वाहन में लादने में सक्षम होना चाहिए। अभी इस तरह के कामों में जिन लोगों को बिल्कुल आगे लगाया जाता है, वे अप्रशिक्षित होते हैं और अधिकतर एम्बुलेंस के अशिक्षित चालक होते हैं।

सभी हेल्थ केयर वर्करों को हर साल रिफ्रेशर कोर्स के बाद हर वक्त इस तरह के कामों के लिए तैयार, प्रशिक्षित और प्रमाणित होना चाहिए। प्रोफेसरों और स्वास्थ्य प्रबंधकों समेत किसी को भी इसका अपवाद नहीं होना चाहिए। सभी वर्करों के पास प्राथमिक देखभाल कर सकने की क्षमता वाले वैध सर्टिफिकेट हर वक्त होने चाहिए। अगले दस वर्षों में हमें स्कूलों में भी इस तरह के कोर्स लागू करने की योजना बनानी चाहिए।

मुख्य तौर पर भवनों के निर्माण पर ध्यान देने की जगह हमारा ध्यान सेंट्रलाइज्ड एम्बुलेंस सेवा उपलब्ध कराने की तरफ जाना चाहिए। यह सेवा 911-जैसे केंद्रीय नंबर की तरह का होना चाहिए। 'डिजिटल इंडिया' में इस तरह की एम्बुलेंस सेवा संभव भी है। ऐसे एम्बुलेंस में प्रशिक्षित पैरामेडिकल कर्मचारी और अपेक्षित उपकरण होने चाहिए। 100 से 200 किलोमीटर के दायरे में निजी और सरकारी- दोनों सेक्टरों में इस तरह की सुविधाओं की उपलब्धता को लेकर रीयल टाइम आंकड़े भी होने चाहिए।

जानकारी-आधारित की जगह योग्यता-आधारित शिक्षा और आकलन पर जोर दिए जाने की जरूरत है। अभी तो आरामकुर्सी पर बैठने वाले ऐसे फिजीशियन बनाने पर एमबीबीएस में जोर दिया जाता है जो फ्लुईड चढ़ाने की शुरुआत करने या ब्लड प्रेशर सही-सही जांचने तक में सक्षम नहीं हो पाते। एमबीबीएस डॉक्टरों को जानकारी, तकनीकी ज्ञान, कुशलता तो होनी ही चाहिए, उनमें ऐसी प्रवृत्ति भी होनी चाहिए कि उन्हें इस बात का अहसास हो कि एक एमबीबीएस डॉक्टर को क्या-क्या करने में सक्षम होना चाहिए और उससे क्या अपेक्षा की जाती है; आगे की लैब जांच या अन्य किसी जांच के लिए उसे कब रेफर करना चाहिए या उसके लिए कब लिखना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि किसी मरीज को किसी कार्डियोलॉजिस्ट से कब दिखलाए जाने की जरूरत है या उसे यह बात कंठस्थ होनी चाहिए कि कोरोनरी एंजियोग्राफी या बायपास सर्जरी के क्या तरीके बेकार हैं।

एमबीबीएस कोर्स का उद्देश्य कुशल प्राथमिक केयर डॉक्टर होना है। बेहतर हो, उसे कम्युनिटी डॉक्टर कहें ताकि उसे लगातार ध्यान रहे कि उसे समुदाय की सेवा करनी है। यह बात बेहतर है, अन्यथा यह नहीं कि उसके लिए एमबीबीएस महज पैर रखने का पत्थर भर हो ताकि वह पोस्टग्रेजुएट कोर्स कर सके। दुर्भाग्यवश, बाद वाली बात भारत में अभी ज्यादा प्रचलित है।

संचार किसी भी हेल्थकेयर का मुख्य विंदु है, फिर भी यह मेडिकल पाठ्यक्रमों में सबसे उपेक्षित क्षेत्र रहा है। अपनी आजादी के 73 वर्षों बाद भी हम अंग्रेजी भाषा के पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं हो पाए हैं। ग्रामीण और पिछड़े इलाकों से आने वाले मेडिकल के विद्यार्थियों को इससे नुकसान उठाना पड़ता है। ऐसे विद्यार्थियों की संख्या 50 प्रतिशत है। हर विद्यार्थी से अंग्रेजी भाषा पढ़ने की कामचलाऊ जानकारी होने की अपेक्षा की जाती है इसलिए यह बिल्कुल सही है कि मेडिकल किताबों को हिंदी या क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा में अनुवाद किए जाने की बिल्कुल ही जरूरत नहीं है। शिक्षकों को मातृभाषा में विद्यार्थियों को पढ़ाने और उनके साथ संवाद करना चाहिए ताकि क्लासरूम में विद्यार्थी को बातों को समझने में सुविधा रहे।

***

यह इसलिए जरूरी है कि डॉक्टरों को मरीजों के साथ आम तौर पर देसी भाषा में ही बातचीत करनी होती है और दूसरी तरफ, उन्होंने जिस अंग्रेजी भाषा में पढ़ाई-लिखाई की होती है, उससे मरीजों की शिकायतें समझने या रोग की पहचान करने में वे हर वक्त सुविधा महसूस नहीं करते। इससे कई बार उन्हें मरीजों को रोग के बारे में और उपचार की व्यवस्था बताने में दिक्कत होती है। इससे होता यह है कि मरीजों को जो सलाह दी जाती है, उनका पालन वे उस तरह नहीं कर पाते।

न सिर्फ क्लासरूम की पढ़ाई के दौरान बल्कि प्रेजेंटेशन और व्याख्यानों के दौरान भी शिक्षकों को तकनीकी शब्दों और मुहावरों के सिवाय मातृभाषा का ही उपयोग करना चाहिए। थ्योरी पेपर्स और परीक्षाओं के लिए भी विद्यार्थियों को मातृभाषा में जवाब देने की आजादी होनी चाहिए। स्थानीय भाषा से परिचित न होने वाले शिक्षकों और विद्यार्थियों को इन्हें सीखने के कोर्स की सुविधा दी जानी चाहिए। इस सुविधा के लिए मेडिकल संस्थानों को स्थानीय विश्वविद्यालयों के साथ करार करना चाहिए।

पिछले लगभग 100 वर्षों से हम रोबोटिक डॉक्टर पैदा कर रहे हैं। इस वजह से कई बार डॉक्टर और पैरामेडिकल स्टाफ संवेदनहीन की तरह भी व्यवहार करने लगते हैं। सवाल पूछने वाले रोगियों के प्रति उनमें शून्य सहिष्णुता तक हो जाती है। आम तौर पर कह दिया जाता है कि 'तुम डॉक्टर हो या मैं डॉक्टर हूं?' या 'क्या तुम मुझसे बेहतर समझते हो?' निश्चित तौर पर एक मजदूर ही जानता है कि उसका जूता कहां पर कैसे काट रहा है। इस तरह की अहिष्णुता की वजह से भी डॉक्टरों और नर्सिंग होम और अस्पतालों को कई बार हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

इसके साथ ही एक और बात ध्यान देने की है। आईएएस, राजस्व सेवाओं और सशस्त्र बलों की सेवाओं में अधिकांश लोगों को अपनी कुशलता बढ़ाने के लिए समय-समय पर कुछ कोर्स करने पड़ते हैं। विश्वविद्यालय शिक्षकों और कॉलेज शिक्षकों को अपनी जानकारी और कुशलता बढ़ाने के लिए 'समर कोर्स' में भागीदारी करनी पड़ती है। इसी तरह की प्रक्रिया मेडिकल शिक्षकों के लिए रेगुलर कोर्स में किए जाने की निहायत ही जरूरी है। प्रैक्टिस कर रहे डॉक्टरों के लिए तो अपने फील्ड में अद्यतन जानकारी से परिचित होने के लिए कन्टिनुइंग मेडिकल एजुकेशन (सीएमई) ठीक है लेकिन मेडिकल शिक्षकों के लिए यह बहुत उपयोगी नहीं है।

नेपाल में कम्युनिस्ट पार्टी विभाजन की ओर चीन एक बार फिर खुलकर कर रहा हस्तक्षेप

प्रमोद जोशी

नेपाल की सत्तारूढ़ कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर पिछले कुछ महीनों से चला आ रहा टकराव अब खुलकर सामने आ गया है। संसद भंग कर नए चुनावों की तारीखों की घोषणा होने के बाद दो तरह की गतिविधियां तेज हो गई हैं। पहली पहल चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से हुई है जिसके तहत एक टीम ने नेपाल जाकर संबद्ध पक्षों से मुलाकात की। दूसरी तरफ पार्टी के दोनों धड़ों ने अपनी भावी रणनीति पर विचार-विमर्श शुरू कर दिया है। नेपाल की राजनीति में इस समय तीन प्रमुख दल हैं: नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी, नेपाली कांग्रेस और जनता समाजवादी पार्टी।

नेपाली संसद में कुल 275 सदस्य होते हैं। राष्ट्रपति कार्यालय की तरफ से दी गई जानकारी के मुताबिक, 30 अप्रैल को पहले और 10 मई को दूसरे चरण का मतदान होगा। भारत और नेपाल के बीच पिछले कुछ वक्त से तनाव था। कुछ महीनों से पार्टी दो खेमों में बंटी हुई है। एक की कमान 68 वर्षीय केपीएस ओली के हाथ में है तो दूसरे का नेतृत्व पार्टी के कार्यकारी अध्यक्ष और पूर्व प्रधानमंत्री पुष्प दहल कमल 'प्रचंड' कर रहे हैं।

नेपाल के प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार कनक मणि दीक्षित ने ट्वीट कर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की उच्चस्तरीय टीम के आने की आलोचना की है। उन्होंने लिखा, 'यह सरासर ग़लत है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के उप-मंत्री ग्वो येझू के नेपाल आने को लेकर ऐसा लग रहा है कि उन्हें प्रचंड ने आमंत्रित किया है। जब सुप्रीम कोर्ट पूरे विवाद पर सुनवाई कर रहा है, ऐसे में इस तरह का दौरा निराश करने वाला है।' चीनी प्रतिक्रिया के विपरीत भारत ने शुरू में औपचारिक रूप से कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। भारतीय सूत्रों ने कहा है कि नेपाल को लोकतांत्रिक तरीके से अपनी समस्या का समाधान निकालना चाहिए। भारत के पास नेपाल की आंतरिक राजनीति का ज्यादा अनुभव है। शायद चीन इसीलिए सशंकित भी रहता है।

प्रतीकात्मक तस्वीर

देउबा का महत्व बढ़ा

प्रधानमंत्री केपीएस ओली की इस सिलसिले में नेपाली कांग्रेस के नेता शेर बहादुर देउबा से मुलाकात को काफी महत्वपूर्ण माना जा रहा है। तीसरी बड़ी पार्टी जनता समाजवादी पार्टी के साथ भी ओली संपर्क स्थापित कर रहे हैं। दूसरी तरफ कम्युनिस्ट पार्टी के नेता पुष्प कमल दहल और माधव कुमार नेपाल संसद भंग करने के फैसले के खिलाफ आंदोलन चला रहे हैं।

हालांकि सड़कों पर नेपाली कांग्रेस भी सरकार विरोधी अभियान चला रही है, पर उसका आंदोलन प्रचंड के गुट के साथ मिलकर नहीं चल रहा है बल्कि इस समय ओली के निकटतम राजनीतिक सहयोगी के रूप में देउबा नजर आ रहे हैं। पिछले आठ महीनों में उनकी कई बार ओली से मुलाकातें हुई हैं। इस दौरान एक जगह ओली से पूछा गया कि यदि सदन को बहाल करना पड़ा, तो क्या होगा, उन्होंने कहा देउबा के नेतृत्व में गठबंधन सरकार बनेगी। हम अगले चुनाव तक रोटेशन आधार पर नेपाली कांग्रेस के साथ सरकार का नेतृत्व करेंगे। दूसरी तरफ, देउबा की पार्टी के भीतर इस विषय पर मतभेद हैं। उनकी ही पार्टी के रामचंद्र पौडेल और कुछ अन्य सहयोगी देउबा से सहमत नहीं हैं।

सदन भंग करने के फैसले को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती दी गई है, इसलिए उसके निर्णय का इंतजार करना होगा। नेपाल के संविधान में चुने हुए सदन को भंग करने की व्यवस्था नहीं है। वह तभी भंग हो सकती है जब संसद में किसी पक्ष का बहुमत नहीं हो। सांविधानिक विशेषज्ञों का कहना है कि सदन को भंग करने का अधिकार संविधान ने प्रधानमंत्री को नहीं दिया है, भले ही उनके पास बहुमत हो। इस समय तो कहना मुश्किल है कि बहुमत उनके साथ है भी या नहीं।

गत 20 दिसंबर को संसद भंग होने के बाद से देउबा का महत्व बढ़ गया है। यदि सुप्रीम कोर्ट से संसद की बहाली हो भी गई, तब संभावना इस बात की है कि ओली समर्थक गुट देउबा को प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठाकर उनका समर्थन कर देगा। दूसरी तरफ, यदि चुनाव हुए, तो कम्युनिस्ट पार्टी टूट सकती है। ऐसी स्थिति में कांग्रेस की स्थिति बेहतर हो जाएगी। ओली खुद को स्थापित नहीं कर पाए, तो वह प्रचंड को भी कुर्सी पर बैठने नहीं देंगे।

कम्युनिस्ट एकाधिकार टूटेगा

नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी का इस समय देश पर एकछत्र शासन है। संसद में उसके पास दो तिहाई से ज्यादा का बहुमत है और सात में से छह राज्यों की विधानसभाओं में उसे दो तिहाई से ज्यादा की बढ़त हासिल है। पार्टी यदि विभाजित हुई, तो पूरे देश की राजनीति विभाजित होगी। नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी का गठन 2018 में ओली के नेतृत्व वाली नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी (एकीकृत माले) और पुष्प दहल कमल प्रचंड के नेतृत्व वाली नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी सेंटर) के विलय से हुआ था। ओली और प्रचंड दोनों संयुक्त रूप से पार्टी के अध्यक्ष बनाए गए थे।

पिछले कुछ समय से प्रचंड का दबाव था कि ओली अपने पदों से इस्तीफा दें। पार्टी का औपचारिक विभाजन नहीं हुआ है, पर दो धड़े साफ उभरकर सामने आ चुके हैं। प्रचंड के गुट ने ओली को पद से हटाकर उनकी जगह माधव कुमार नेपाल को संयुक्त अध्यक्ष घोषित किया है। अलबत्ता इस समय विभाजन दोनों पार्टियों की पिछले धड़ों के आधार पर नहीं है। प्रचंड को दो पूर्व प्रधानमंत्रियों- माधव नेपाल और झालानाथ खनाल का समर्थन हासिल है जो एकीकृत माले से जुड़े रहे हैं। दूसरी तरफ, ओली को राम बहादुर थापा का समर्थन हासिल है जो पुराने माओवादी नेता हैं।

नेपाल का कम्युनिस्ट आंदोलन भी चीन के कम्युनिस्ट आंदोलन से नहीं निकला है। नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 1949 में कोलकाता में हुई थी। उसके गठन में भारत के कम्युनिस्ट नेताओं का हाथ था। इस पार्टी में एक तबका रूसी प्रभाव में भी था। बहरहाल देश में राजतंत्र के खिलाफ चले आंदोलन में कम्युनिस्ट पार्टी ने नेपाली कांग्रेस का साथ दिया था। प्रकारांतर से चीनी प्रभाव वाले नेता भी इस आंदोलन में शामिल हुए। भारत के नक्सलवादी आंदोलन का प्रभाव भी नेपाल पर पड़ा। सन 1974 में एक माओवादी गुट का जन्म देश में हो गया था। उधर कम्युनिस्ट पार्टी (माले) की स्थापना 1978 में हुई।

नब्बे का दशक आते-आते माले ज्यादा बड़े संगठन के रूप में उभर कर सामने आई। इसमें कुछ और समूहों के जुड़े जाने के बाद यह एकीकृत माले हो गई। सन 1994 में इस पार्टी ने मनमोहन अधिकारी के नेतृत्व में सरकार भी बनाई। बाद में इस पार्टी में भी टूट हुई। उधर, माओवादियों के समूह भी बनते-टूटते रहे। इन गुटों के बीच एकता कायम हुई और सीपीएन-यूनिटी सेंटर नाम से एक समूह उभरा। इसके राजनीतिक फ्रंट के नेता थे बाबूराम भट्टराई।

देर-सबेर नेपाली कम्युनिस्ट पार्टियों ने संसदीय राजनीति के रास्ते को स्वीकार किया और अब उससे जुड़े निहितार्थों से जूझ रही हैं। सन 2007 के जनांदोलन की परिणति सन 2015 की संविधान निर्माण प्रक्रिया में हुई और 2017 में कम्युनिस्ट पार्टियों ने मिलकर चुनाव लड़ा। उसमें भारी सफलता पाने के बाद 2018 में विलय कर लिया। पर यह विलय बहुत सोच-समझकर नहीं हुआ था। पार्टी के भीतर वैचारिक मसलों पर व्यक्तिगत राग-द्वेष हावी हैं।

चीन किसके साथ?

क्या इस राजनीतिक संकट का समाधान चीन कर पाएगा? पार्टी का विभाजन हुआ, तो चीनी कम्युनिस्ट पार्टी किसका समर्थन करेगी? ऐसे सवाल लोगों के मन में है। हाल में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अंतरराष्ट्रीय विभाग के उपाध्यक्ष ग्वो येझू के नेतृत्व में एक उच्चस्तरीय टीम हालात का जायजा लेकर गई है। चीन के सीधे हस्तक्षेप ने काफी चौंकाया भी है क्योंकि नेपाली संप्रभुता की दुहाई देने वालों को इससे धक्का लगा है।

ओली में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (सीसीपी) को एक उपयोगी सहयोगी और अधीन रहने वाला मिल गया। उनके कार्यकाल के दौरान सीसीपी और नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने रिश्तों को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। राजनीतिक और सैन्य प्रतिनिधिमंडल एक-दूसरे के साथ कार्यक्रमों का आदान-प्रदान बढ़ा रहे हैं और गत वर्ष हवाई मार्ग से नेपाल आने वाले चीनी पर्यटकों ने विमान से नेपाल पहुंचने वाले भारतीय पर्यटकों को भी पछाड़ दिया। इससे चीन का आत्मविश्वास बढ़ा है।

नेपाल के लेखक कनक मणि दीक्षित ने ट्वीट कर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की उच्चस्तरीय टीम के आने की आलोचना की है। उन्होंने अपने ट्वीट में लिखा है, 'यह सरासर ग़लत है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के उप-मंत्री ग्वो येझू के नेपाल आने को लेकर ऐसा लग रहा है कि उन्हें प्रचंड ने आमंत्रित किया है। जब सुप्रीम कोर्ट पूरे विवाद पर सुनवाई कर रहा है, ऐसे में इस तरह का दौरा निराश करने वाला है।'

चीनी प्रतिक्रिया के विपरीत भारत ने शुरू में औपचारिक रूप से कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। भारतीय सूत्रों ने कहा है कि नेपाल को लोकतांत्रिक तरीके से अपनी समस्या का समाधान करना चाहिए। भारत के पास नेपाल की आंतरिक राजनीति का ज्यादा अनुभव है, शायद चीन इसीलिए सशंकित भी रहता है। नवंबर के अंतिम सप्ताह में भारत के विदेश सचिव हर्षवर्धन श्रृंगला ने नेपाल का दौरा किया था। उस यात्रा के दो दिन बाद ही चीन के रक्षामंत्री का भी अचानक एक दौरा हुआ।

इस बीच खबर है कि नेपाली विदेशमंत्री प्रदीप ग्यावली भारत और नेपाल के बीच बने संयुक्त आयोग की बैठक में भाग लेने के लिए जनवरी में भारत आएंगे। अभी इसकी तारीख तय नहीं है। यह यात्रा औपचारिक है, पर संभव है कि इस दौरान कुछ महत्वपूर्ण बातें हों। इतना जरबर लगता है कि पार्टी में विभाजन अब बस औपचारिक रह गया है। चूंकि भारत और चीन दोनों की नेपाल में गहरी रुचि है इसलिए मामले के उलझने के खतरे हैं। बहरहाल पहले हमें सुप्रीम कोर्ट के फैसले का इंतजार करना होगा।

सांप्रदायिकता और धार्मिक आडंबर के खिलाफ थे विवेकानंद

स्वर्णेन्दु बिस्वास

भारत समेत पूरी दुनिया 12 जनवरी को स्वामी विवेकानंद की 157वीं जयंती मनाने जा रही है। स्वामी विवेकानंद का मूल नाम नरेंद्रनाथ दत्त था। उनका जन्म कोलकाता के एक अभिजात्य बंगाली परिवार में 12 जनवरी, 1863 को हुआ। उनका निधन महज 39 वर्ष की उम्र में 12 जुलाई, 1902 को हो गया। लेकिन इस अल्प जीवनकाल में ही वह पश्चिमी दुनिया को प्राचीन भारतीय दर्शन और हिंदू धर्म के मर्म और इसकी गहराइयों के बारे में समझाने में सफल रहे।

आधुनिक संदर्भों में हिंदू धर्म की फिर से व्याख्या करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। वह हिंदू धर्म जो जाति-आधारित शोषण और अस्पृश्यता की हठधर्मिता से सर्वथा परे है। यहां हम स्वामी विवेकानंद की कुछ प्रेरणादायी उक्तियों के साथ उनके घटनापूर्ण और उद्देश्यपूर्ण जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं/घटनाओं पर गौर करेंगे।

अनछुए-से पहलू

विवेकानंद हिंदुत्व में सदियों के दौरान घुस आए जातिवाद, अस्पृश्यता और आडंबरपूर्ण धार्मिक रीति-रिवाजों के बड़े आलोचक थे।

स्वामी विवेकानंद ने एफए (बाद में यह परीक्षा आईए या कला में इंटरमीडिएट कहलाने लगी) की परीक्षा में केवल 46 फीसदी अंक और स्नातक (बीए) में 56 प्रतिशत अंक हासिल किए थे। इससे यह बात फिर से साबित होती है कि महानता और ज्ञान को अंकों से नहीं मापा जा सकता।

वर्ष 1884 में अपने पिता विश्वनाथ दत्त के निधन के बाद विवेकानंद का परिवार गरीबी से घिर गया और दिवालिएपन की स्थिति में आ गया। 19वीं शताब्दी के मध्य के उन कठिन वर्षों के दौरान कई बार विवेकानंद अपनी मां से यह कहकर सुबह ही निकल जाया करते कि दोपहर के भोजन के लिए वह कहीं आमंत्रित हैं। लेकिन वास्तविकता यह थी कि वह इसलिए अक्सर निकल जाया करते कि घर के बाकी सदस्यों के हिस्से ज्यादा भोजन आ सके। घर से बाहर निकलकर वह भूखे रहते लेकिन किसी से यह बात साझा नहीं करते।

विवेकानंद के पास बीए की डिग्री थी और वह नौकरी के लिए काफी हाथ-पैर भी मार रहे थे, इसके बावजूद उन्हें निराशा ही हाथ लगी।

जिस संत ने हिंदू धर्म की दार्शनिक गहराइयों और सूक्ष्मता से पश्चिम का परिचय कराया, वह जीवन के अपने 39 वर्षों के दौरान कई बीमारियों से पीड़ित रहा जिनमें माइग्रेन, अस्थमा, टॉन्सिलाइटिस, टायफायड, मलेरिया, लीवर संबंधी समस्याएं, अनिद्रा, लगातार बुखार, गैस्ट्रोएंटेराइटिस, दस्त, अपच, मधुमेह, पेट दर्द प्रमुख थीं।

उन्हें चाय का बहुत शौक था और उन्होंने अपने बेलूर मठ में इसका चलन शुरू किया। बेलूर कोलकाता के पास गंगा से कुछ ही दूरी पर बसा एक छोटा-सा शहर है।

"हम न केवल सार्वभौमिक सहिष्णुता में भरोसा करते हैं बल्कि सभी धर्मों को सच मानते हैं। मुझे ऐसे देश पर गर्व है जिसने पृथ्वी के सभी धर्मों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को बसेरा दिया है।... सांप्रदायिकता, कट्टरता और इसका भयानक रूप धर्मांधता लंबे समय से इस खूबसूरत पृथ्वी पर छाई रही हैं। उन्होंने पृथ्वी को हिंसा से भर दिया है, इसे बार-बार मानव रक्त से सराबोर किया है, सभ्यता को नष्ट किया है राष्ट्रों को निराशा में धकेला है। अगर ये भयानक दरिंदे नहीं होते तो मानव समाज कहीं अधिक उन्नत होगा।"

विवेकानंद के अनमोल बोल

हिंदू धर्म, कट्टरता, सत्य और जीवन पर

- "मुझे ऐसे धर्म से जुड़े होने पर गर्व है, जिसने दुनिया को सहिष्णुता और विश्व बंधुत्व सिखाया है। हम न केवल सार्वभौमिक सहिष्णुता में भरोसा करते हैं बल्कि सभी धर्मों को सच मानते हैं। मुझे ऐसे देश पर गर्व है जिसने पृथ्वी के सभी धर्मों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को बसेरा दिया है।"
- "सांप्रदायिकता, कट्टरता और इसका भयानक रूप धर्मांधता लंबे समय से इस खूबसूरत पृथ्वी पर छाई रही है। उन्होंने पृथ्वी को हिंसा से भर दिया है, इसे बार-बार मानव रक्त से सराबोर किया है, सभ्यता को नष्ट किया है राष्ट्रों को निराशा में धकेला है। अगर ये भयानक दरिंदे नहीं होते तो मानव समाज कहीं अधिक उन्नत होगा।"
- 11 सितंबर, 1893 को शिकागो में हुए प्रथम विश्व धर्म संसद में स्वामी विवेकानंद के भाषण के अंश:
- "सत्य को एक हजार अलग-अलग तरीकों से व्यक्त किया जा सकता है, फिर भी उनमें से हर सत्य ही होता है।"
- "अपने स्वभाव के प्रति पक्का होना ही सबसे बड़ा धर्म है। स्वयं पर भरोसा रखें।"
- "जब किसी दिन आपके रास्ते में कोई समस्या नहीं आए तो समझ लें कि आप गलत राह पर चल रहे हैं।"

विवेकानंद धूम्रपान करते थे और वह सिगार के भी शौकीन थे। उन्हें आइसक्रीम बहुत अच्छी लगती थी। खिचड़ी उनके पसंदीदा व्यंजनों में थी।

हिंदू धर्म के बड़े ज्ञाता विवेकानंद यीशु मसीह के बड़े प्रशंसक थे।

भारतीय और पश्चिमी दर्शन, इतिहास, धर्म, कला और साहित्य-जैसे विविध विषयों पर विशद अध्ययन करने के अलावा स्वामी विवेकानंद ने भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी प्रशिक्षण ले रखा था।

उनकी स्मृति अद्भुत थी। एकदम अलौकिक। कहते हैं कि एक बार उन्होंने एक पुस्तकालय से कुछ किताबें लीं और अगले ही दिन यह कहते हुए उन्हें लौटा दिया कि उन्होंने सभी को पढ़ लिया है। स्वाभाविक ही लाइब्रेरियन को लगा कि विवेकानंद शेखी बघार रहे हैं और उसने बड़ी सावधानीपूर्वक उनसे पुस्तकों में दी गई सामग्री के बारे में काफी पूछताछ की जिससे पता चला कि विवेकानंद ने वास्तव में उन किताबों को पढ़ लिया था। वह भी एक दिन में! एक बार एक बातचीत के दौरान उन्होंने चार्ल्स डिकेंस के प्रसिद्ध उपन्यास पिकविक पेपर्स के तीन पन्नों को शब्दशः उद्धृत कर दिया।

सम्राट मोदी की ताकत से लोहा लेता गरीब किसान

खरी-खरी

ज़फ़र आग़ा

इतिहास में हर सम्राट सदा यही सोचता चला आया है कि उसकी ताकत एवं शान-शौकत के आगे मामूली प्रजा की क्या हैसियत! यदि सम्राट मोदी ऐसा सोच रहे हैं तो ऐसी कौन-सी अनोखी बात है। परंतु इतिहास यह भी बताता है कि बड़े से बड़ा सम्राट अंततः मामूली प्रजा से ही पराजित होता है। महाराज मोदी को यह भ्रम है कि उनके पास 'मुसलमान' नाम का ऐसा ब्रह्मास्त्र है जिसके चलते वह किसान आंदोलन तो क्या, न जाने कितनी बगावतें कुचल सकते हैं। परंतु अब किसान भी समझ रहा है कि यह अंग्रेज सम्राटों-जैसी बंटवारे की राजनीति है।

अब 'सबका साथ, सबका विकास' समाप्त! अब केवल होगा अंबानी-अडानी विकास। यह है महाराजाधिराज सम्राट नरेंद्र मोदी का देश के नाम संदेश। आप चौंक गए, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को 'महाराज' एवं 'सम्राट' क्यों लिखा! तो मैं पहला व्यक्ति नहीं जो मोदी जी को सम्राट कह कर संबोधित कर रहा है। भूल गए क्या, सारा गुजरात उनको 2002 के नरसंहार के बाद 'हिंदू हृदय सम्राट' कहकर ही संबोधित करता था। केवल 'गुजराती प्रजा' ही नहीं बल्कि गुजराती मीडिया भी उनको 'हिंदू हृदय सम्राट' ही लिखता एवं बोलता था। मानें या न मानें, मोदी जी की मनोकामना भी इतिहास में आधुनिक भारत के हिंदू सम्राट के रूप में जाने जाने की है। लोकतंत्र उनके लिए सत्ता प्राप्ति का केवल एक साधन है। उनके लगभग सात वर्षों के कार्यकाल से स्पष्ट है कि वह लोकतांत्रिक मान्यताओं में तनिक भी विश्वास नहीं रखते हैं। उनके हाव-भाव भी सम्राटों-जैसे हैं। जरा पलट कर देखिए तो स्पष्ट दिखाई देता है कि संसदीय प्रणाली में उनको कोई दिलचस्पी नहीं है। तब ही तो कोरोना महामारी की आड़ में भारतीय संसद के इतिहास में यह पहली बार हुआ है कि संसद का संपूर्ण शीतकालीन सत्र ही स्थगित कर दिया गया। वैसे, जब महाराज को खेती-बाड़ी के नए कानून पारित करवाने थे और उस समय कोरोना महामारी भी अपने चरम पर थी तो संसद का मानसून सत्र बुला लिया गया था। अब संसद भी सम्राट मोदी की इच्छानुसार ही चलेगी।

एक संसद क्या, देश की संपूर्ण व्यवस्था 'महाराज मोदी' के आगे या तो स्वयं नतमस्तक है अथवा उसको इस स्थिति में पहुंचा दिया जाता है कि वह 'महाराज' के आगे झुकने को मजबूर हो जाती है। वह देश का चुनाव आयोग हो अथवा देश की न्यायपालिका या फिर अफसरशाही- सब 'महाराज मोदी' के आगे नतमस्तक हैं। मीडिया जो बोल सकता था, उसको गोदी मीडिया बना दिया गया है। बोले तो विज्ञापन बंद। इसलिए मीडिया भी 'महाराज' का दरबारी बन मजे कर रहा है। लोकतंत्र में विपक्ष की अहम भूमिका होती है। फाइल के मंत्र से विपक्ष को भी चुप करा दिया गया है। बस, केवल गांधी परिवार सरकार के विपक्ष में खड़ा दिखाई पड़ता है। बाकी तो चारों ओर सन्नाटा है। सिविल सोसायटी में यदि कोई चूं करता है तो वह 'महाराज मोदी' के काल में काल कोठरी में ठूंस दिया जाता है। बस, चारों ओर महाराज सम्राट मोदी की जय-जयकार है और महाराज प्रसन्नचित हैं।

परंतु वह कोई सम्राट हो अथवा प्रधानमंत्री, शासकों का समस्याओं से तो सामना होता ही है। अब यूं तो चारों ओर महाराज मोदी की जय-जयकार है। परंतु इस देश के किसानों की न जाने क्यों मत मारी गई है कि वे पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश से अपने घर-बार छोड़कर 'महाराज' के विरोध में निकल पड़े हैं। परंतु सम्राट मोदी भी किसी मुगले आजम से कम नहीं हैं। उन्होंने यह तय कर लिया है कि वह भी इन बागियों को ऐसा सबक सिखाएंगे कि फिर कभी जनता का कोई भी वर्ग 'महाराज' के खिलाफ सिर उठाने की कल्पना भी न कर सके। तब ही तो सिंघु, टिकरी और गाजीपुर बॉर्डर पर हजारों किसान खुले आसमान के नीचे पड़ा है। ठंड अपनी चरम सीमा पर है। इस लेख के लिखे जाने तक तीन दिनों से इस कड़कड़ाती ठंड में घंटों-घंटों बारिश हो रही है। और तो और, ओले भी पड़ रहे हैं। अब तक पचास किसानों की इस खुले आसमान के नीचे मृत्यु हो चुकी है। परंतु 'महाराज सम्राट मोदी' के माथे पर शिकन तक नहीं है। मोदी जी के संतरी (उनको मंत्री भी कहते हैं) किसानों को वार्ता के लिए बुलाते हैं। अब तक सात चरण की वार्ता विफल हो चुकी है। वार्ता के हर चरण के बाद वह अपने संतरी/मंत्री से पूछते हैं क्या बागी भगा दिए गए। मंत्री उनको समझा देते हैं कि हम उनके खिलाफ बल प्रयोग नहीं कर रहे हैं। हम तो बागी किसानों को वार्ता में फंसाकर उनको मौसम की मार से ऐसा थका रहे हैं कि कभी किसी की बगावत की हिम्मत ही नहीं पड़े। महाराज मुस्कुराते हैं और इशारा करते हैं कि ऐसे ही वार्ताक्रम चलाए रखो।

महाराज मोदी के लिए किसान आंदोलन नाक का सवाल हो गया है। महाराज मोदी ने गुजरात में अपने मुख्यमंत्री के शासन काल के समय से ही लौह पुरुष की छवि बना रखी है। भारतवासी भले ही लोकतंत्र की माला जपें। वह तो सदा से हर बागी का सिर कुचलने में विश्वास रखते हैं। आखिर, गुजरात के मुसलमानों का सन 2002 में उनके शासन काल में ऐसा सिर कुचला गया कि सारे देश के मुसलमान आज तक उनसे भयभीत हैं। फिर भी इन पंजाबी और जाट किसानों को क्या हो गया कि वे सिर पर कफन बांधकर मोदी जी के कृषि कानूनों के खिलाफ घर से निकल पड़े। इतना ही नहीं, इन किसानों ने तो एक फौज के समान दिल्ली ही घेर ली। वह भी ऐसे समय में जब 'महाराज' का डंका चारों ओर बज रहा था। अब जाहिर है कि यह महाराज के लिए नाक का सवाल बन गया। यदि हजारों की तादाद में ऐसे 'बागी' दिल्ली की सरहद पर धरना देंगे तो कल को देश के कोने-कोने में बगावत फूट पड़ेगी। 'महाराज' भले ही दिल्ली में बड़ी चमक-दमक एवं शान-बान से हों लेकिन अंदर के हालत तो खराब ही हैं। कोरोना महामारी ने देश की अर्थव्यवस्था चरमरा दी है। करोड़ों लोग बेरोजगार हैं। काम-धंधा बंद पड़ा है। यदि आज सरकार किसानों के आगे झुक गई तो फिर तो देश के कोने-कोने से बगावत फूट पड़ेगी। खजाना वैसे भी खाली है। आखिर, महाराज किस-किस की सुनेंगे। इसलिए किसानों से निपटने की महाराज की रणनीति स्पष्ट है। इन किसानों को वार्ता में फंसाकर बातचीत चलाते रहो। इस ठंड और बारिश में आखिर ये गरीब किसान कब तक बैठे रहेंगे। अंततः थक-हार कर चले ही जाएंगे। और फिर गोदी मीडिया 'सम्राट' के गुण गाएगा। देश को चीख-चीख कर यह बताएगा कि देखा विजय तो 'महाराज' की ही हुई।

इतिहास में हर सम्राट सदा यही सोचता चला आया है कि उसकी ताकत एवं शान-शौकत के आगे मामूली प्रजा की क्या हैसियत! यदि सम्राट मोदी ऐसा सोच रहे हैं तो ऐसी कौन-सी अनोखी बात है। परंतु इतिहास यह भी बताता है कि बड़े से बड़ा सम्राट अंततः मामूली प्रजा से ही पराजित होता है। महाराज मोदी को यह भ्रम है कि उनके पास 'मुसलमान' नाम का ऐसा ब्रह्मास्त्र है जिसके चलते वह एक किसान आंदोलन तो क्या, न जाने कितनी बगावतें कुचल सकते हैं। मुस्लिम शत्रु का हव्वा खड़ा करो और सारे हिंदू महाराज को 'अंग रक्षक' मान पुनः उनकी शरण में आ जाएंगे। तब ही तो महाराज के सूबेदारों ने 'लव जिहाद' का शोर आरंभ कर दिया है, अर्थात मुस्लिम वर्ग ने प्रेम अस्त्र का प्रयोग कर हिंदू बालिकाओं की इज्जत पर हाथ डालना आरंभ कर दिया है। रोज मुस्लिम लड़के पकड़े जा रहे हैं। साथ-साथ मध्य प्रदेश जैसे सूबे में गांव-गांव दंगे हो रहे हैं। अर्थात किसान इस हिंदू-मुसलमान के शोर में सब भूलकर 'अंग रक्षक' सम्राट मोदी की शरण में आ जाए।

परंतु अब किसान भी समझ रहा है कि यह अंग्रेज सम्राटों-जैसी बंटवारे की राजनीति है। वह तय किए बैठा है कि हम जान दे देंगे लेकिन मांगें मनवा कर रहेंगे। उसके लिए यह मौत और जिंदगी का नहीं, नाक का भी सवाल बन गया है। अब देखें इस नाक की लड़ाई में किसकी नाक ऊंची रहती है। किसानों की अथवा सम्राट मोदी की।

और क्षीरसागर से निकला आत्मनिर्भर वैक्सीन घट

मृणाल पाण्डे

सरकार ने कोविड की वैक्सीन को लेकर जो घोषणाएं की हैं, जिस तरह जबरन, बिना समुचित परीक्षण के प्रमाण हरी झंडी देकर कोविशील्ड और कोवैक्सिन को 'आत्मनिर्भर भारत' का प्रतीक बता कर उसने साफ कर दिया है कि हिंदू राष्ट्रवादियों में तर्कसंगत वैज्ञानिकता और सही वैचारिक नुस्खे, दोनों नहीं बचे हैं। क्या आज तक बिना जरूरी उपकरणों और चिकित्सकीय परामर्श के, कोई जवान पर्वतारोही भी एवरेस्ट पर चढ़ा है? पर हम हैं कि गंभीर विश्व महामारी से जूझ रहे लाखों मरीजों और उनकी सेवा तथा इलाज करने वाले स्वास्थ्यकर्मियों को 'आत्मनिर्भर भारत' और देशप्रेम के नाम पर एक ऐसी वैक्सीन के लिए गिनीपिग बनाए दे रहे हैं।

2021 की शुरुआत में लग रहा है कि शायद 2019 के लोकसभा चुनावों ने देश के लैंडस्केप से पार्टियों का ही नहीं, राजनीति में वैचारिकता, विविधता का भी लगभग सफाया कर दिया है। कई विचारों का घालमेल होते हुए भी कांग्रेस 2014 तक एक लोकतांत्रिक विचार तो थी ही। जीवंत चलती-फिरती लोकतांत्रिकता से जरूरी जन मुद्दों की बाबत जो बहस-मुबाहसे और संसदीय टकराव निकलते हैं, उनके क्षीण ही सही लेकिन प्रामाणिक दर्शन हमको हर बरस संसद सत्रों के दौरान हो ही जाते थे। बड़े उपक्रम, व्यापक मनरेगा जैसी योजनाएं और आईआईटी और एम्स जैसे तकनीकी तथा चिकित्सकीय शिक्षा के उन्नत संस्थान और साहित्य, संगीत, कला वगैरा से जुड़ी अकादमियां तब सरकार के लिए सिर्फ डींगभरी गर्व का विषय नहीं, मूलतः एक उदारवादी, धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के हिस्से भी थे। सच है कि कांग्रेस में भीतरी टकराव और गुटबाजी तब भी थी, यह भी संभव है कि चुनाव-दर-चुनाव भीतरखाने जमीनी राजनीति के शातिर राजनीतिक जोड़-तोड़ या भाव-ताव तब भी चलते रहते हों, लेकिन इसमें शक नहीं कि तब तक वैचारिक धरातल पर मुलायम सिंह, नीतीश कुमार, प्रकाश करात, नरेंद्र मोदी और योगी जी सबके पास अपनी खास वैचारिक जमीन थी। और उसके बूते वे बहुत कुछ ऐसा सार्वजनिक तौर से ऐलानिया कहा, किया करते थे, (मसलन एमएसपी का विरोध, निर्भया रेप कांड के बहाने कानून-प्रशासन की निंदा अथवा स्वास्थ्य या शिक्षा क्षेत्र में सरकारी निवेश का समर्थन), जिसका फायदा उनको 2014 में मिला। पर आज जब वे खुद सत्ता में हैं, लगभग वही काम उसी तर्ज पर वे खुद भी कर रहे हैं। 2019 के बाद से विपक्ष की वैचारिक जमीनें कब्जाने का संघर्ष क्रमशः तीखा और कटु होता गया है। 2021 तक आते-आते सरकार के हर नुमाइंदे को सरकारी काम देशप्रेम का प्रतीक और उससे इतर खड़े नेता या किसी जनांदोलन का सरकार के इकतरफा अहम फैसलों पर सवालिया निशान लगा देना बांझ और देशविरोधी नजर आता है जिसे साम-दाम-दंड-भेद हर तरह से रोकना जायज है।

यह एकाएक नहीं हुआ। 2004 के बाद जब मनरेगा और मिड-डे मील जैसी खर्चीली योजनाओं ने 2009 तक वोटरों, खासकर महिला वोटरों के मर्म को छू लिया था, गरीब लोगों को लगने लगा था कि इनके पीछे एक तरह की लोकतांत्रिक जिम्मेदारी का अहसास है जो अर्थव्यवस्था के खुलने के फायदों को सबसे नीचे की सीढ़ी के वोटर तक आंशिक रूप से ही सही, लेकिन पहुंचाते रहने का एक ठोस चैनल बना रही है। फिर 2014 में वैकल्पिक विचारों का एक बड़ा हाहाकार देश में उठा कर कांग्रेस को पश्चिमोन्मुखी, छद्म लिबरल और छद्म बुद्धिजीवियों को पालने वाली बताते हुए भाजपा नीत गठजोड़ ने दिल्ली का सिंहासन हासिल कर लिया। इसके बाद जो कई दक्षिणपंथी नेता, साधु-साध्वी बानाधारी भाजपा कार्यकर्ता पन्नाप्रमुख आदि बाबरी ध्वंस के बाद के बरसों में हर धार्मिक मेले हरिकथा रामचरित मानस के मोहल्लास्तरीय अखंड पाठ के समय आपस में सुना-सुना कर कहते थे कि हाय हिंदुत्व खतरे में है, उनको भी मौका मिला कि वे अपने बड़े नेताओं को शत-शत नमन करते हुए अपनी तरह का हिंदूनीत देश रचें। और शेष धर्मावलंबियों का जो हो, यज्ञ, हवन, अखंड आरतियों, कथित वैदिक रूढ़ि-रिवाजों को हिंदुत्व प्रचार का नाम देकर संसद से सड़क तक फैला दिया जाए।

अगर नोटबंदी, हाथरस कांड, कोविड और अब देशव्यापी किसान धरने ने 2014-21 के बीच हर भारतीय के आगे हमारी अर्थव्यवस्था ही नहीं, कानून प्रशासन और राजकीय स्वास्थ्य कल्याण सहित संसदीय व्यवस्था का पोलापन न उजागर कर दिया होता, तो हिंदुओं को शायद लगता कि हिंदू भारत उनके लिए सचमुच एक नई तरह की कामधेनु है। पर सरकार ने इधर कोविड की वैक्सीन को लेकर जो घोषणाएं की हैं, जिस तरह जबरन, बिना समुचित परीक्षण के प्रमाण हरी झंडी दे कर कोविशील्ड और कोवैक्सिन को 'आत्मनिर्भर भारत' का प्रतीक बता कर उसने साफ कर दिया है कि हिंदू राष्ट्रवादियों में तर्कसंगत वैज्ञानिकता और सही वैचारिक नुस्खे, दोनों नहीं बचे हैं। क्या आज तक बिना जरूरी उपकरणों और चिकित्सकीय परामर्श के, कोई जवान पर्वतारोही भी एवरेस्ट पर चढ़ा है? पर हम हैं कि गंभीर विश्व महामारी से जूझ रहे लाखों मरीजों और उनकी सेवा तथा इलाज करने वाले स्वास्थ्यकर्मियों को 'आत्मनिर्भर भारत' और देशप्रेम के नाम पर एक ऐसी वैक्सीन के लिए गिनीपिग बनाए दे रहे हैं जिसके स्नायु तंत्र अथवा ब्रेन पर कोई गंभीर स्थायी दुष्परिणामों की बाबत अभी तक कोई पक्की जानकारियां नहीं हैं। अचरज नहीं कि संयुक्त राष्ट्र संगठन की प्रतिनिधि डॉ. कांग ने सरकार और उसके चिकित्सातंत्र की ऐसी उतावली और रोग निरोधी टीके को इलाज के समतुल्य ठहराने को 'समझ से परे' करार दे दिया है।

अब तक यह साफ हो चुका है कि कोविड-19 के रूप में वैज्ञानिक एक नई तरह के वायरस को देख रहे हैं। इसकी सही काट के लिए कारगर रोग निरोधी टीका बनाना हो तो उसके लिए तयशुदा वैज्ञानिक प्रक्रिया में राजनीतिक दबावों की तहत कोई शॉर्टकट निकालना घातक होगा। इसलिए हर वैक्सीन का तीन चरणों में मानवीय वॉलंटियरों पर परीक्षण करना होता है, फिर उसके नतीजों से मिला सारा डेटा पारदर्शी तरीके से अपने पेशे के अन्य विशेषज्ञों से उसको जंचवाना होता है। उनकी स्वीकृति पाने के बाद ही किसी भी दवा का मसौदा कमर्शियल उत्पादन के लिए सरकार को सौंपने का विधान है। सरकार खुद अपने विशेषज्ञों से उनकी संतुष्टि का सबूत मिलने के बाद ही उत्पादन को हरी झंडी देती है। हमारे यहां एक वैक्सीन ऑक्सफॉर्ड एस्ट्रा का भारतीय संस्करण है, जिसका पुणे में पूनावाला सीरम इंस्टीट्यूट ब्रिटिश निर्माताओं के साथ सह-उत्पादन कर रहा है। वह आपात्कालीन दशा में इस्तेमाल के लिए ब्रिटिश सरकार से ब्रिटेन में स्वीकृति पा चुकी है हालांकि 1600 वॉलंटियरों पर किए गए उसके तीसरे चरण के प्रयोग का डेटा अभी सार्वजनिक होना है। लेकिन अधिक विवाद हैदराबाद की बायोटेक कंपनी और भारतीय चिकित्सा शोध परिषद द्वारा सह-उत्पादित कोवैक्सीन को लेकर हो रहा है, जिसका तीसरा चरण शुरू भी नहीं हुआ, उसके लिए अभी वॉलंटियर खोजे ही जा रहे हैं। और जिसके पहले दो चरणों का डेटा भी अभी सार्वजनिक होना है।

कोविशील्ड के निर्माताओं का दावा है कि परीक्षण के दौरान उनका कोविड निरोधी टीका 70 फीसदी सफल पाया गया है जबकि भारतीय ड्रग कंट्रोलर जनरल वीजी सोमानी इसे 110 प्रतिशत सेफ बता चुके हैं। कोवैक्सीन को हरी झंडी दिए जाने की बाबत एम्स के प्रमुख डॉ. गुलेरिया का कहना है कि कोवैक्सीन का इस्तेमाल 'फॉल बैक' यानी आपात्कालीन स्थिति में बतौर विकल्प ही प्रयोग होगा। लेकिन उन्होंने इसकी संदिग्ध क्षमता की बाबत इतना ही कहा कि उसका प्रयोग किया गया तो सफलता संभव (लाइकली टु) है।

इस बिंदु पर जानकार लोगों के बीच भारत निर्मित वैक्सीनों को लेकर तीन मुख्य चिंताएं हैं। एक, कि रोग निरोधी टीकों का इस्तेमाल उपचार नहीं रोग निरोध के लिए किया जाता है। इसलिए जब रोग उफान पर हो बिना संपूर्ण परीक्षणों से गुजरी वैक्सीन का प्रयोग अगर सही नतीजे न दे, तो इसका जिम्मेदार कौन होगा? वे वैज्ञानिक जो इस पर काम करते रहे हैं, या वे राजनीतिक तत्व जो अपनी नाक बचाने को इसका परीक्षण पूरा होने से पहले इसका भारी मात्रा में उत्पादन जायज बना रहे हैं? दो, कोविशील्ड की बाबत एम्स के प्रमुख का कहना कि उम्मीद है वैक्सीन जब इस्तेमाल होगी तो संभवतः सफल ही होगी, क्या इस बात का परिचायक नहीं कि एक उम्दा अनुभवी चिकित्सक होने के नाते वह उसकी सफलता की पक्की गारंटी देने की बजाय उसे 'संभावित' बता रहे हैं। तीन, हमारे ड्रग कंट्रोलर जनरल ऐसे टीके की, जिसे अभी पूरी परीक्षाओं में खरा उतरना बाकी है, जिसका डेटा अपारदर्शी बना हुआ है, 110 प्रतिशत सफल होने की भविष्यवाणी कैसे कर रहे हैं? अगर आज सरीखे नाजुक आपात्काल में भी सरकारें सोच विचार से तलाक लेकर कानून की बजाय सनक, सिद्धांत की बजाय कंपनी विशेष की सिफारिश और जनहित की बजाय अमीरों के प्रति पक्षपात और गरीब गिनीपिगों के लिए दादागिरी दिखाते हुए 'आत्मनिर्भर भारत' जैसे नारे के आधार पर लाखों नाजुक स्वास्थ्य वाले नागरिकों को नए टीके के परीक्षण का गिनीपिग बनाना गलत न मानें, तो इसका साफ मतलब है वे 'विचारविहीन मही मैं जानी' की गर्वोक्ति से अपनी छाती फुला रहे हैं।

दुनिया में अगर सबसे अधिक प्रतिगामी कोई चीज़ है, तो वह विचारहीनता ही है। शायद इसी कारण निरंतर चुनावी मोड में रहने वाले राजनेताओं ने ही नहीं, हमारे गोदी मीडिया, सरकारी बाबुओं, वैज्ञानिकों और उद्योग जगत ने भी कोविड की आपदा में पीड़ित जनता के कष्ट निवारण करने की बजाय मसला ए वैक्सीन को अपने लिए कोई रत्नजटित सिंहासन या पंचहजारी ओहदा हथियाने का नायाब अवसर बना डाला है।

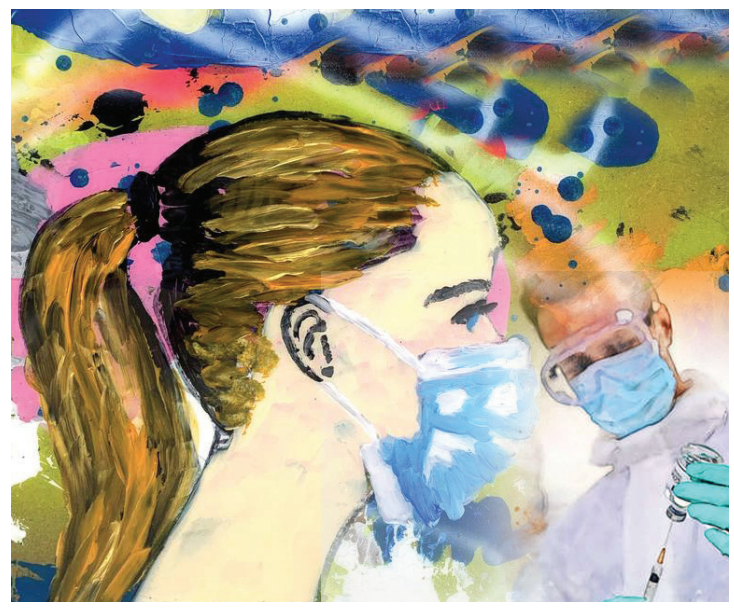

धरोहर

इसमें आश्चर्य ही क्या है?

बारडोली की लड़ाई से सरकार की राजनीति नहीं बदली। किसानों की हिम्मत के आगे सरकार झुकी जरूर है। जहां-जहां बारडोली-जैसी हिम्मत होगी, तहां-तहां सरकार झुकेगी। जब किसानों को स्वाभिमान का पाठ पढ़ाया जाएगा, तब कोई उनका बाल बांका नहीं कर सकेगा। अन्यत्र दिए गए संक्षिप्त बयान सच हों हैं या नहीं, इस पर मैं यहां विचार नहीं करना चाहता। अगर उनमें कोई अतिशयोक्ति है, तो सरकारी अधिकारी उसे सुधारें, जो सुधार वे भेजेंगे, मैं छापने के लिए तैयार रहूंगा। मगर मैं इतना तो जानता हूं कि संक्षिप्त बयानों में उल्लिखित जुल्मों से भी ज्यादा जुल्म हुए हैं, होते हैं, अतः ऐसे अत्याचार किए भी गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। इस लेख का उद्देश्य यही बताना है कि सैकड़ों बारडोलियों के होते हुए भी जहां के लोग इरफोक बने रहेंगे, वहां अत्याचारी मिलते रहेंगे। यह दूसरी बात है कि अत्याचारी सरकारी व्यक्ति हैं या गैर सरकारी। अतः स्वयंसेवकों का कर्तव्य है कि वे सर्व-साधारण को हिम्मत का पाठ सिखाएं। लोगों के चाहने पर भी सर्वत्र वल्लभभाई-जैसे सरदार तो मिल नहीं सकते। इसलिए सभी स्वयंसेवकों को वल्लभभाई के गुण सम्पादन करने का प्रयत्न करना चाहिए। उनके-जैसी बुद्धि सबको नहीं मिल सकती; मगर उनकी-सी हिम्मत तो चाहे वही प्राप्त कर सकता है और उनकी तरह आठों पहर जागरुक भी चाहे वहीं रह सकता है। अगर ये दो बातें हो तो बस।...

महात्मा गांधी, नवजीवन, 7-7-1929

सहयात्री

खेत-मजदूरों की मजदूरी शायद ही बढ़ी

दिल्ली और उत्तर प्रदेश के बीच गाजीपुर सीमा पर मनीष और उनके कुछ दोस्त कुछ दिन पहले किसानों के धरने में शामिल हुए हैं। वे बागपत जिले से हैं। मनीष ने बताया, "गन्ने के मौसम में हमें लगभग एक महीने के लिए दाल-रोटी और करीब 250 रुपये प्रति दिन मजदूरी मिलती है। जब खेतों में काम नहीं होता तो मैं किसी भी निर्माण कार्य से जुड़ी मजदूरी खोजने की कोशिश करता हूं।" उनके रिश्ते के भाई रविंदर अपनी कमाई के चौंकाने वाले और घातक अर्थशास्त्र की व्याख्या करते हैं। वह कहते हैं, "पिछले कई वर्षों से दैनिक मजदूरी व्यावहारिक रूप से वहीं की वहीं हैं। भूमि-मालिकों का कहना है कि उन्हें खुद की उपज का पर्याप्त पैसा नहीं मिल रहा है तो अधिक मजदूरी कहां से दें।" यही वजह है कि दोनों ने फैसला किया कि कुछ दिनों के लिए गाजीपुर सीमा पर जाते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि शायद किसानों (भूमि मालिकों) का सफल संघर्ष अंततः उन्हें भी कुछ लाभ उपलब्ध कराए। श्रम ब्यूरो के हाल के आंकड़े बताते हैं कि यूपी में खेत-मजदूरों की दैनिक मजदूरी सितंबर, 2015 में लगभग 200 रुपये से बढ़कर सितंबर, 2020 में मात्र 272 रुपए हुई है, यानी प्रति वर्ष लगभग 15 रुपये या 7 प्रतिशत की वृद्धि। यदि इन पांच वर्षों में मूल्य वृद्धि की प्रति वर्ष औसत 4.4 प्रतिशत इसमें समायोजित कर लें तो यह वृद्धि प्रति वर्ष लगभग 2.5 प्रतिशत रह जाती है। खेती के विभिन्न कार्यों के लिए पुरुष मजदूरों की मजदूरी में 12-16 रुपये और महिला मजदूरों की मजदूरी में 10-14 रुपये की वृद्धि हुई है। ये पूरे भारत की औसत दरें हैं। कुछ राज्यों में हालात बहुत ज्यादा बदतर हैं। मजदूरी के मामले में यूपी सबसे खराब राज्यों में से एक है। खेत-मजदूरों का जीवन स्तर बहुत खराब हो गया है इसलिए वे बीमारियों, शिक्षा और विवाह/मौतों के लिए जो हर किसी के जीवन के जरूरी कार्य हैं, के लिए ऋण लेते हैं और जिसे वे चुका नहीं पाते हैं और नतीजतन उनका कर्ज बढ़ता जाता है।

NEWSCLICK

बंगाल: भाजपा के 75 लाख रोजगार कार्ड का सच

भाजपा ने पश्चिम बंगाल में 75 लाख युवाओं को रोजगार आश्वासन कार्ड देने वाले अभियान को दो हफ्ते बाद वापस ले लिया। पार्टी ने विधानसभा चुनाव जीतने पर 75 लाख युवाओं को रोजगार देने का वादा किया था। यह अभियान 13 दिसंबर को शुरू किया गया था। भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष और सांसद दिलीप घोष ने कहा, "रोजगार शब्द में समस्या है। कई लोगों को लगता है कि उन्हें इस कार्ड से रोजगार मिल जाएगा। हम वास्तव में बेरोजगारी के स्तर को मापने के लिए सर्वे करना चाहते थे और फिर रोजगार सृजन के लिए नीति तैयार करना चाहते थे...।" इस कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए भाजपा ने कहा था कि अगले कुछ महीने में 294 विधानसभा सीटों के युवाओं को रोजगार आश्वासन कार्ड दिया जाएगा। कार्डधारकों को उनकी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर अगले पांच सालों में रोजगार दिया जाएगा। भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष मुकुल रॉय ने कहा था, "मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने नौ सालों में कई वैश्विक निवेश शिखर सम्मेल किए लेकिन उद्योग स्थापित करने के लिए राज्य में कोई निवेश नहीं हुआ जबकि राज्य में जो उत्पादन इकाइयां पहले से थीं, उन्हें भी सिंडिकेट राज की वजह से बाहर जाने को विवश होना पड़ा।" भाजयुमो के प्रदेश अध्यक्ष और बिष्णुपुर से सांसद सौमित्र खान ने कहा, "लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने के बजाए मुख्यमंत्री युवाओं से आजीविका के लिए सड़कों पर स्ट्रीट फूड बेचने को कह रही हैं। हम युवाओं को रोजगार मुहैया कराएंगे।" रॉय और खान 2019 तक तृणमूल कांग्रेस में थे। इस योजना को वापस लिए जाने पर खान ने कहा, "हमने रोजगार आश्वासन कार्ड देना बंद कर दिया है। रोजगार देने के बजाए हम रोजगार सृजन के लिए काम करेंगे।" पश्चिम बंगाल के एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी ने पहचान उजागर नहीं करने की शर्त पर बताया, "इस अभियान ने पूरी तरह से आधिकारिक रोजगार एक्सचेंज प्रक्रियाओं को नकार दिया। अभियान में कोई दम नहीं था और इसे किसी भी अदालत द्वारा निरस्त कर दिया जाता।"

वायर

आपके पत्र

कृषि संकट को उजागर करती किसान की आत्महत्या और सुसाइड नोट

किसान का संकट अकेले फसल को लेकर ही नहीं है बल्कि इसके साथ और भी संकट जुड़े होते हैं। हमारे यहां ज्यादार छोटी जोत वाले किसान हैं और उनकी आर्थिक स्थिति कमोबेश खराब ही रहती है। कर्ज का फंदा किसान के गले में हमेशा लटका रहता है। मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले के एक किसान मुनेंद्र की दुःखभरी कहानी कृषि संकट की तस्वीर पेश करती है। बिजली बिल नहीं चुका पाने की स्थिति में ऊर्जा कंपनी ने उसकी आटा चक्की और मोटरसाइकिल जब्त कर ली थी। इस कार्रवाई से परेशान होकर उसने आत्महत्या कर ली। उसने सुसाइड नोट में लिखा कि मरने के बाद उसका शरीर शासन को दे दिया जाए ताकि अंग बेचकर सरकार अपना कर्जा चुका ले। उसने अपनी आर्थिक स्थिति के बारे में भी लिखा, "मेरी एक भैंस करंट लगने से मर गई। तीन भैंसें चोरी हो गई। आषाढ़ में (खरीफ फसल) खेती में कुछ नहीं मिला। लॉकडाउन में कोई काम नहीं और चक्की भी नहीं चली। इस कारण हम बिल नहीं दे सके।" दरअसल, लगातार गहराता कृषि संकट बहुत सारे किसानों को मुनेंद्र की स्थिति में धकेल देता है। कृषि संकट पर सरकारों को गंभीरता से सोचना चाहिए, न कि कथित सुधारों के नाम पर इस संकट को और बढ़ाना चाहिए।

-रवि कुमार, भोपाल

अख़बार में प्रकाशित सामग्री पर पाठक अपने विचार और प्रतिक्रिया हमें नीचे लिखे ईमेल आईडी पर भेज सकते है-
contact@navjivanindia.com

●ग्रुप सीनियर एडिटोरियल एडवाइजरः **मृणाल पाण्डे;** कंसल्टिंग एडिटरः **दिवाकर**; संपादकीय टीमः अरविंद शरण, कृष्ण सिंह, राम शिरोमणि शुक्ल; डिजाइन टीमः काजी एम. रागिब, महेंद्र सिंह बनेशी, अमित सिंह ; फोटोग्राफरः विपिन; विज्ञापनः दीपायन चौधरी (दिल्ली) 011-47636300 (एक्स.313) dipayan.chowdhury@nationalheraldindia.com, कुमार पी. (बेंगलुरू) 9845344063, mathewkuma@gmail.com, अमनदीप सिंग्ला (चंडीगढ़) 7833900007; प्रसार/सब्स्क्रिप्शनः फोन : 011-47636321 / 313, ईमेल :subscriber@navjivanindia.com • ईमेलः contact@navjivanindia.com, www.navjivanindia.com, •कॉपीराइट © "इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा नवजीवन और/अथवा दि एसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड (एजीएल) को श्रेय दिए बिना किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से- फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग, या अन्य इलेक्ट्रॉनिक अथवा यांत्रिक तरीकों सहित- पुनः उत्पादित, वितरित या प्रसारित नहीं किया जा सकता।" • इस प्रकाशन या इससे जुड़े किसी भी विवाद के लिए विशेष क्षेत्राधिकार दिल्ली के न्यायालय होंगे। **सामग्री सहयोगः** स.प्रेस, आईएएनएस, गेट्टी इमेजेज़.

कविता/अली जावेद

दानिश्वर

उसने पूछा
कहां है वो
तुम्हारे सब साथी
जो अक्सर जुलूसों और
मुजाहरों में
तुम्हारे साथ होते थे
किसानों और मेहनतकशों के
हक में
नारे लगाते थे?

मैंने कहा
हां! वो सब हैं
अब भी
फिक्रमंद रहते हैं
किसानों और मेहनतकशों
के लिए
हां,
वो, पहले से जरा ज्यादा
आसूदा* हो गए हैं

वो
अब जाते हैं
बड़े - बड़े सेमिनारों में
शरीक होते हैं
अंग्रेजी बोलने वालों की बहसों में
किसानों और मेहनतकशों के
हक में

लेकिन
किसानों और मेहनतकशों को
पता नहीं चल पाता
उनकी चिंताओं और
फिक्रमंदी का
वो अब
दानिश्वर हो गए हैं!

* संतुष्ट

कविता/शोभा सिंह

किसान और नन्हे बीज

किसान और नन्हे बीज
वे जिनके रास्ते खो गए
बुरे वक्त के मारे गए थपेड़ों
से बेकल
सुलगती धूप के सन्नाटे में
भीतर का खालीपन उलीचते
जमाने भर के दर्द से बेहाल
सिमट कर बैठ नहीं पाते
शेष-हार नहीं
बच्चों की उम्मीद भरी आंखें
सुरमई शाम-सी बेहद खूबसूरत
घेर लेतीं
मासूम सवालों के साथ
क्यों कहा बाबा
संकट गहरा है
कैसा संकट
दिखता कैसा है
बड़ा राक्षस
तीन आंखों वाला
नहीं मेरे प्यारो
उर्वर जमीन खाद पानी से
वंचित किए गए हम किसान
धरती हमारी प्यासी है
पानी, बीज समय से
भर देता इस खालीपन को
सुकून और हरियाली
जीवन जुड़ता है इन से
तृप्ति की मुस्कान तुम्हारी
तब वापस आती
संकट है न भारी
मुस्कान छीनने का
नफरत के विस्तार का
युद्ध का
बर्बर हिंसा का
आपसी मेल जोल पर कुल्हाड़ी
चलती
जीवन रक्षक पेड़ भी घायल
रोजमर्रे के जीवन की
गांठें बस कसती जाती हैं
निर्दय राजनीति में कर्ज
झूठ का बोलबाला है
महंगाई का ऑक्टोपसी संकट
गहरा है बहुत ही गहरा
इसे हटाना
इसे मिटाना
लक्ष्य एक है
सपनों के बीज चाहिए
आजादी का पोषण भी खालीपन
फिर भर देंगे
नन्हें-नन्हें बीज।।

'देखो, चाय वाले की शर्मिंदगी तभी फनी है जब शायर इसे जाती तौर पर ना ले। अगर शायर ज्यादा हंसे, तो वह फनी नहीं रहेगा क्योंकि तब ऐसे लगेगा मानो शायर चायवाले का मजाक उड़ा रहा है। शायर को स्थिति में हास्य दिखाई देता है, मगर उसके लिए इसमें छोटे-बड़े का फर्क नहीं है। उसे फर्क नहीं पड़ता कि चायवाले के मुकाबले उसकी हैसियत ऊंची है। दूसरी तरफ, चायवाले की शर्मिंदगी इसलिए दुगुनी है क्योंकि वह शायर की सामाजिक हैसियत को जानता है। उसकी यह सामाजिक हैसियत, उसका पढ़ा-लिखा होना, वही शायर को उस गुंडे का मुकाबला करने के लिए आत्मविश्वास देती है। वह देखते-देखते अपने तर्कों से उसका कीमा बना देता है। हम चाहते हैं कि दर्शक इस बिंदु पर हंसें क्योंकि यहां जो हंसी होगी, वह राजनीतिक हंसी होगी जिसके माध्यम से दर्शक भी रूढ़िवादी राजनीति के प्रति अपनी असहमति जाहिर करेंगे।' मेरी निगाह में ऐक्टिंग के प्रति हबीब साहब के रवैये की कुंजी यही थी। दर्शकों को महसूस होना चाहिए कि गुंडे से शायर को सचमुच खतरा है, उनमें वह बेचैनी पैदा होनी चाहिए क्योंकि एक तरह से वह शायर उन आम इंसानों की चेतना का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो सद्भाव के साथ और हिंसा के बिना जीना चाहते हैं। मगर ये खतरा उस ऐक्टर के जरिए साकार नहीं होगा जो गुंडे की भूमिका निभा रहा है। हालांकि उसकी भूमिका और उसकी ऐक्टिंग महत्वपूर्ण थी और उसकी भी बार-बार और बड़े सटीक ढंग से रिहर्सल कराई गई थी जिससे उसका किरदार एक कैरीकेचर भर ना रह जाए। यह मुख्य रूप से तब पैदा होगा जब आप दर्शकों को सही मनोदशा में ले आएंगे जिसके लिए आपको पिछले दृश्य के हास्य को सटीक संतुलन में रखना होगा।

हबीब तनवीर की कुंजी- ऐक्टर वह बर्तन है जो भावनाओं को दर्शकों तक ले जाता है

सुधन्वा देशपांडे

हबीब (तनवीर) साहब ऐक्टर्स को हर रन के बाद 'प्वॉइंट्स' दिया करते थे। ये ऐसे प्वॉइंट होते थे जिनको हमें जेहन में रखना होता था, याद रखना होता था। ये अपने आप में एक स्थापित तरीका है। आप एक रन-थ्रू करते हैं और फिर डायरेक्टर अपने ऐक्टर्स को इकट्ठा करके उन्हें फीडबैक देते हैं। बतौर ऐक्टर, मैं असंख्य बार इस रस्म से गुजरा हूं और मैंने एक निर्देशक के तौर पर भी इस प्रक्रिया को असंख्य बार दोहराया है। फिर भी, ऐसा क्यों है कि मेरे जेहन में ये फीडबैक सेशन हबीब साहब के साथ जुड़कर रह गया है?

ये उस आला शख्सियत की मोहकता, उसकी विद्वत्ता, और सेंस ऑफ ह्यूमर का नतीजा है। उनके लिए संभव ही नहीं था कि वे किसी परिस्थिति के हास्यपरक पहलू को नजरअंदाज कर पाएं। वह ऐक्टर्स को जो फीडबैक देते थे, वह भी हास्य में लिपटा होता था- कभी कोमल, कभी बारीक, और कई बार पांव उखाड़ देने वाला। मुझे जो बात सबसे मार्के की लगी, वह थी अपने ऐक्टर्स को नसीहत देने का उनका अंदाज। मिसाल के तौर पर, वह कहते, 'जब तुम्हें मालूम होता है कि तुम्हारा बच्चा मर गया है, तो उस वक्त तुम्हारी रफ्तार बहुत तेज लगती है। जरा आहिस्ता चलो, भारी कदमों से चलो।' या 'पुलिस वाले को झांसा देने के बाद खंखार कर और अच्छी तरह अपनी छाती साफ करो।' या 'जब वह तुम्हारे इशारे को अनसुना कर दे, तो सिपाही को और ऊंची आवाज में पुकारो, और कड़ी आवाज लगाओ।'

आपको लगेगा कि इन हिदायतों में कुछ भी तो खास बात नहीं है। सिवाय इसके- इनमें से किसी भी नसीहत में हबीब साहब भावनाओं या जज्बात के बारे में बात नहीं कर रहे हैं। आने वाले सालों में मैंने बार-बार इस बात को देखा। हबीब साहब कभी भी अपने ऐक्टर्स से 'भावना' नाम की चीज के बारे में बात नहीं किया करते थे। वह कभी भी ये नहीं कहते थे कि 'इसमें जज्बात डालो' या 'इसे और फीलिंग के साथ निभाओ' वगैरह। मिसाल के तौर पर आप ऊपर दी गई स्थितियों को देखें। दूसरे निर्देशकों के 'प्वॉइंट' शायद ये होते: 'हमें और ज्यादा शोक दिखाओ', 'मगरूर अंदाज में निकल जाओ' या 'और ज्यादा गुस्सा दिखाओ'।

'महसूस करने' की बजाय 'करने' पर हबीब साहब का ये फोकस कई बार तो चकरा देने की हद तक चला जाता था - ऐक्टर के लिए। 1990 में हबीब साहब श्रीराम सेंटर रेपर्टरी के लिए असगर वजाहत के नाटक 'जिस लाहौर नी वेख्या वो जन्म्याई नई' का निर्देशन कर रहे थे। यह नाटक बंटवारे की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। यह एक बूढ़ी हिंदू औरत की कहानी है जो लाहौर में अपनी हवेली को छोड़कर नहीं जाना चाहती हालांकि उसका पूरा कुनबा भारत के लिए पलायन कर चुका है। जब ये हवेली भारत से आए एक मुस्लिम परिवार को आवंटित कर दी जाती है, तो उन्हें मालूम चलता है कि यहां एक हिंदू औरत अभी भी मौजूद है। जैसे-जैसे नाटक आगे बढ़ता है, ये बूढ़ी औरत इस्लामिक कट्टरपंथियों के अलावा हरेक की अजीज हो जाती है। इस नाटक में एक किरदार शायर है जो रात में शहर की सड़कों पर भटकता है। एक दृश्य में

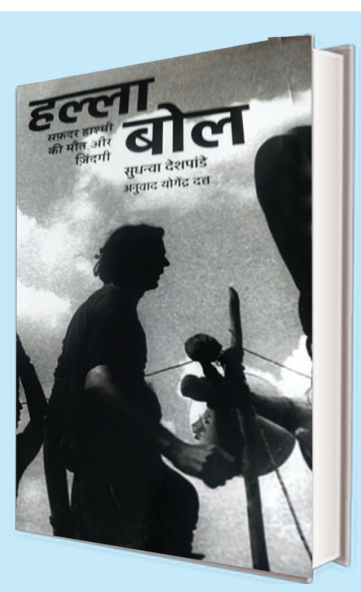

हल्ला बोल: सफदर हाश्मी की मौत और जिंदगी
लेखक : सुधन्वा देशपांडे
अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद : योगेंद्र दत्त
प्रकाशक : वाम प्रकाशन, 2254/2 ए, शादी खामपुर, न्यू रंजीत नगर, नई दिल्ली 110008
पहला संस्करण : 2020
कीमत : 325 रुपये

वह सड़क किनारे चाय बेचने वाले को जगाता है। झल्लाहट में, चाय वाला एक मोटी-सी गाली देता है, मगर फिर उसे पता चलता है कि ये तो उसका चहेता शायर है, और वह शर्मिंदा होता है। यह एक मजेदार सीन था। पहली बार जब मैंने इसकी रिहर्सल देखी, तो मेरी भी हंसी छूट गई थी। मेरी नजर में तो इस सीन में कोई कमी नहीं थी। फिर हबीब साहब ने ऐक्टरों से ये दृश्य दोहरवाया। हर बार वह उससे कोई छोटी-सी चीज दुरुस्त करने के लिए कहते– 'जब गाली देते हो, तो अपनी जांघ पर और जोर से थाप मारो' या 'नहीं-नहीं, आंखें तीन बार मत मलो, दो बार ही काफी है'। जब चाय वाले का हिस्सा दुरुस्त हो गया, तो हबीब साहब शायर की ओर मुड़े: 'ना-ना, हंसते हुए अपने सिर को इतना पीछे मत करो' या 'जब उसको जगाते हो, तो अपना मुंह खुला मत रखो। जब वह गाली दे, तब अपना मुंह खोलना। मगर मुंह खोलना सिर्फ हल्की-सी हंसी के लिए।'

इसे अतिशयोक्ति मत मानिएगा। उन्होंने वाकई इन छोटी-छोटी चीजों पर घंटे से ज्यादा लगा दिया था। लगता था उन्हें कोई चीज तसल्ली नहीं देती। आखिरकार ऐक्टरों की हिम्मत ने जवाब दे दिया। शायर का किरदार निभा रहे ऐक्टर ने मिन्नत करते हुए कहा, 'सर मैंने इसको इतनी बार किया, हर तरह से। आप कैसी फीलिंग चाहते हैं?' इस पर हबीब साहब ने खामोश, हल्के-से मुस्कुराते हुए उसको देखा। वह उठे, और उसे करके दिखाया। कोई शक नहीं था – जो उन्होंने किया, वो लाजवाब था। इसके बाद वे शायर की तरफ मुड़े और कहा, 'तुम फीलिंग्स के बारे में कुछ ज्यादा सोच रहे हो। तुम सिर्फ अपनी पेशियों को सही ढंग से चलाओ, बाकी सब सही हो जाएगा।' इसके बाद उन्होंने एक-एक सेंटीमीटर खुद चलकर दिखाया कि वे किस पेशी से क्या करते हैं, किस तरह वे एक पैर का वजन दूसरे पर और दूसरे का पहले पर बदलते हैं, जब वह अपनी पीठ सीधी करते हैं, तो उनकी कोहनी कितनी पीछे जाती है, वगैरह। ऐक्टर की दाद देनी पड़ेगी कि थके होने के बावजूद उसने इसे जज्ब किया और सीन को बखूबी खेलने लगा।

कहानी का मर्म यहीं खत्म नहीं होता। यह छोटा–सा दृश्य– जिस पर हमेशा दर्शकों के ठहाके गूंजते थे– के बाद शायर और एक मुस्लिम कट्टरपंथी गुंडे की मुठभेड़ होती है। ये एक गंभीर दृश्य है मगर शायर की हाजिरजवाबी से एक बार फिर ठहाके गूंजते। मगर इस बार हंसी का रंग अलग होता। ऊपर मैंने जिस रिहर्सल का जिक्र किया था, उसमें तकरीबन डेढ़-दो साल बाद एक बिल्कुल अलहदा संदर्भ में मैं हबीब साहब से इस बारे में बात कर रहा था कि किस तरह हंसी भी अलग-अलग किस्म की होती है और किस तरह कई बार हमारे नुक्कड़ नाटक टोली के अभिनेता परेशान हो जाते हैं जब लोग पुलिस या उद्योगपति के गुंडों द्वारा मजदूर की पिटाई को देखकर भी हंसने लगते हैं। फिर मैंने जिस लाहौर का हवाला देते हुए उनसे पूछा कि उन्होंने शायर का किरदार निभा रहे ऐक्टर से इतनी मेहनत क्यों करवाई थी।

'देखो, चाय वाले की शर्मिंदगी तभी फनी है जब शायर इसे जाती तौर पर ना ले। अगर शायर ज्यादा हंसे, तो वह फनी नहीं रहेगा क्योंकि तब ऐसे लगेगा मानो शायर चायवाले का मजाक उड़ा रहा है। शायर को स्थिति में हास्य दिखाई देता है, मगर उसके लिए इसमें छोटे-बड़े का फर्क नहीं है। उसे फर्क नहीं पड़ता कि चायवाले के मुकाबले उसकी हैसियत ऊंची है। दूसरी तरफ, चायवाले की शर्मिंदगी इसलिए दुगुनी है क्योंकि वह शायर की सामाजिक हैसियत को जानता है। उसकी ये सामाजिक हैसियत, उसका पढ़ा-लिखा होना, वही शायर को उस गुंडे का मुकाबला करने के लिए आत्मविश्वास देती है। वह देखते-देखते अपने तर्कों से उसका कीमा बना देता है। हम चाहते हैं कि दर्शक इस बिंदु पर हंसें क्योंकि यहां जो हंसी होगी, वह राजनीतिक हंसी होगी जिसके माध्यम से दर्शक भी रूढ़िवादी राजनीति के प्रति अपनी असहमति जाहिर करेंगे। मगर ये हंसी उस समय तक नहीं आएगी जब तक कि तनाव इतना नहीं बढ़ जाता कि ऐसा लगने लगे कि गुंडा शायर पर हमला करने वाला है– वह संभावना जिसे शायर की हाजिरजवाबी मिटा देती है। और ये तनाव, शायर की जिंदगी के लिए पैदा हो रहा, ये असली खतरा तब तक सघन नहीं होगा, जब तक चायवाले की शर्मिंदगी पर पैदा होने वाली हंसी संतुलित नहीं होगी।' ओह, तो यह बात थी। उस छोटी-सी चीज को पैदा करने के लिए दो घंटे तक थकाऊ रिहर्सल करनी पड़ी क्योंकि आगे जो तनाव पैदा होने वाला था, वह इस हंसी पर पैदा होता और यह तनाव रूढ़िवादी गुंडे पर दर्शकों की आने वाली हंसी का आधार बनता जो कि पूरे नाटक का ना सही मगर उस दृश्य का राजनीतिक मर्म था। मेरी निगाह में ऐक्टिंग के प्रति हबीब साहब के रवैये की कुंजी यही थी। दर्शकों को महसूस होना चाहिए कि गुंडे से शायर को सचमुच खतरा है, उनमें वह बेचैनी पैदा होनी चाहिए क्योंकि एक तरह से वह शायर उन आम इंसानों की चेतना का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो सद्भाव के साथ और हिंसा के बिना जीना चाहते हैं। मगर यह खतरा उस ऐक्टर के जरिए साकार नहीं होगा जो गुंडे की भूमिका निभा रहा है (हालांकि उसकी भूमिका और उसकी ऐक्टिंग महत्वपूर्ण थी और उसकी भी बार-बार और बड़े सटीक ढंग से रिहर्सल कराई गई थी जिससे उसका किरदार एक कैरीकेचर भर ना रह जाए) बल्कि मुख्य रूप से तब पैदा होगा जब आप दर्शकों को सही मनोदशा में ले आएंगे जिसके लिए आपको पिछले दृश्य के हास्य को सटीक संतुलन में रखना होगा।

कहने का मतलब यह है कि दरअसल ऐक्टर वह बर्तन है जो भावनाओं को दर्शकों तक ले जाता है, जैसे गिलास खुद नशे में डूबे बिना शराब को पीने वाले तक लेकर जाता है। शराब और गिलास की यह उपमा नाट्यशास्त्र में मिलती है। व्यवहार के धरातल पर ऐक्टर और डायरेक्टर के लिए इसका क्या मतलब है, यह मैं तब तक नहीं समझ पाया था जब तक हबीब साहब से नहीं मिला था।

भुलवा राम, दीपक तिवारी, उदय राम, चैत राम, गोविंद राम, माला बाई, और आदेश नाग-जैसे नया थियेटर के बहुत सारे कलाकार भी मोटेराम की रिहर्सल में शामिल होते थे। संगीतकार और गायक देवीलाल नाग ने काजल घोष के साथ मिलकर गीतों की धुनें तैयार की थी। मेरे लिए ये पहला मौका था जब मैं इन ऐक्टर्स को इतने नजदीक से देख रहा था हालांकि परफॉर्म करते हुए मैंने उन्हें कई बार देखा था। सफदर इनमें से कइयों को अच्छी तरह जानता था। उसको इस बात का बड़ा मलाल रहता था कि अब फिदा बाई ऐक्टिंग नहीं कर सकती थी।

एक दिन हम उदय और गोविंद को एक छोटा दृश्य बनाते हुए देख रहे थे। यह स्क्रिप्ट में नहीं था और हबीब साहब ने उन्हें तकरीबन कोई हिदायत नहीं दी थी। फिर भी उनकी कोशिश पहली बार में ही कामयाब रही और ये टुकड़ा नाटक का हिस्सा बन गया। मुझे याद है कि इन लोगों को इस छोटे-से हिस्से को इम्प्रोवाइज करते हुए देखकर सफदर किस तरह खुशी से चहक उठा था।

'ब्रेख्त का जो कुछ उपलब्ध है, मैंने वह सब पढ़ा है। कसम से, ऐक्टिंग में डिस्टेंसिंग क्या होती है, यह कोई हबीब साहब के ऐक्टरों से सीखे। नुक्कड़ नाटक के लिए हमें यही सीखना है।' सफदर 'अलगाव/एलिएशन' का नहीं बल्कि 'फासले/डिस्टेंसिंग' शब्द का इस्तेमाल करता था। उसका मानना था कि 'डिस्टेंसिंग' ब्रेख्त की verfremdung की धारणा के नजदीक पड़ता है। सफदर की निगाह में 'अलगाव' शब्द एक सूखा, भावरहित, बेजान अहसास देता है।

(हल्ला बोल से साभार)

मैं राख देता रहा और वह ठीक होती रहीं

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे डॉ. तुलसी राम दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर थे। उनकी आत्मकथा 'मुर्दहिया' इन दो कारणों से भी महत्वपूर्ण है: एक, बिल्कुल निचली सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से आने के बावजूद पढ़ने-लिखने की लगन आदमी को कैसे ऊंचाई तक ले जा सकती है; दो, दलित समाज के लोगों को जीवन में किस तरह की विपरीत स्थितियों को भोगना पड़ता है और कदम-कदम पर ठोकरें खानी पड़ती हैं। पुस्तक रूप में इसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन ने किया है। हम इस बहुचर्चित कृति का धारावाहिक प्रकाशन करते हुए अपने पाठकों से प्रतिक्रिया की उम्मीद करते हैं।

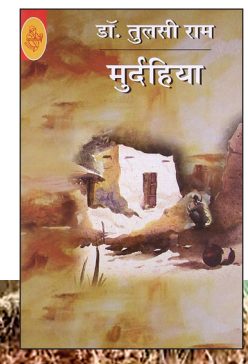

हमारे घर की एक भाभी दुलरिया जो पहलवानी सीखने वाले गोकुल भैया की पत्नी थीं और जो बबुरा धनहुवां गांव के पास वाली चमरौटी से ब्याह कर आई थीं, एक तरह के मनोरोग से पीड़ित हो गईं। उनका अक्सर पेट दर्द करता और वह तुरंत ओझैती वाली भभूत मांगने लगतीं। उस समय पास के ही चतुरपुरा नामक गांव में एक दलित औरत ओझैती करती थी। उसे लोग 'चमैनिया' के नाम से पुकारने लगे थे। लगभग हर रोज ही वह भभूत लाने को कहतीं। भभूत, यानी अगियारी से बनी राख लाने का काम मुझे ही सौंपा जाता था। वह चमैनिया की भभूत खाते ही कहने लगतीं कि पेट दर्द बंद हो गया।

कुछ दिन तक मैं चमैनिया से भभूत लाकर उन्हें देता रहा। बाद में मुझे एक खुराफात सूझी। मैं घर से शाम के समय भभूत लेने निकलता और मुर्दहिया के पास नटिनिया की झोपड़ी से राख लेकर एक पलाश के पत्ते में लपेटकर कुछ देर बाद घर वापस आ जाता। इस राख को भी खाकर वह कहतीं कि पेट दर्द ठीक हो गया। इसके बाद मैं अनगिनत बार भभूत मांगने पर उस भाभी को नटिनिया की झोपड़ी से राख ला-लाकर देता रहा और वह ठीक होती रहीं। कभी-कभी तो मैं घर से ही राख लेकर इधर-उधर से घूमकर वापस आ जाता था जिसे खाकर वह ठीक हो जाती थीं। वह कहतीं कि उनका पेट दर्द भूत-प्रेत के कारण होता था।

इस संदर्भ में मुझे याद आता है एक ढाई हजार साल पुराना भुतहा बौद्ध भिक्षु जो बीमार पड़ने पर सूअर के वधस्थल पर जाकर उसका कच्चा मांस खाता तथा खून पीकर कहता कि उसकी बीमारी ठीक हो गई। उस भिक्षु के बारे में अन्य भिक्षुओं ने बुद्ध को बताया जिसके बाद उन्होंने एक नियम बनाकर अनुमति दी कि भुतहे रोग से पीड़ित भिक्षु सूअर के कच्चे मांस तथा खून का सेवन कर सकता है। इस घटना का उल्लेख 'विनय पिटक' के 'भैषज्य स्कंधक' में किया गया है। यद्यपि बुद्ध भूत-बैताल आदि में विश्वास नहीं करते थे किंतु मनोरोगियों को ठीक करने के लिए वे नियमों को लचीला बना देते थे।

इन सब घटनाओं से पूर्व सन 1961 की गर्मियों में मैं स्वयं भूतों के संदर्भ में मतिविभ्रम का शिकार हो गया था। उन दिनों गन्ने की फसल बोई जा रही थी। जैसा कि गन्ने का कोई जौ-गेहूं की तरह बीज नहीं होता है, उसके डंठल का ही बोझ बांधकर एक दिन पहले पानी में डुबो दिया जाता था जिससे गन्ने के पोर जहां से अंकुर निकलते हैं, मुलायम हो जाते थे। बोने से पहले गन्ने के तीन-तीन पोर वाले डंठल को गंड़ासे से काटा जाता था, उसे पताड़ी कहते थे। दो पताड़ियों के बीच के बिना पोर वाले हिस्सों को अंगरी के रूप में जाना जाता था जिसे बच्चे बड़े चाव से चूस जाते थे।

प्रतीकात्मक चित्र

उस समय गन्ने की बोवाई से कुछ दिन पूर्व खेतों में 'लेहड़' बैठाया जाता था। हमारे गांव में गड़ेरियों का एक परिवार था जो सैकड़ों की संख्या में भेड़ पालता था। गड़ेरिया परिवार कुछ शुल्क लेकर बारी-बारी से इन खेतों में रात के समय अपनी भेड़ों को बैठा देता था। ये भेड़ें रात भर उसी खेत में रहकर मूतती तथा लेड़ी करती थीं जिससे खेत उपजाऊ हो जाता था। इस प्रक्रिया को 'लेहड़' बैठाना कहते थे।

पताड़ी जब भी बोई जाती, एक उत्सव–सा माहौल हो जाता था। दलित बस्ती के अपने-अपने सभी पट्टीदार उसमें सहयोग देते तथा बोवनी समाप्त होने पर सभी हिस्सेदारों को 'ऊखभोज' दिया जाता। ऊखभोज की दावत शादी-विवाहों जैसी होती थी। ऊखभोज के पीछे मान्यता यह थी कि गन्ना जीवनदाई फसल है, इसलिए उसकी बोवाई का दिन त्योहार जैसा होता था। बोवाई के बाद गन्ने के खेतों में पानी की बहुत ज्यादा आवश्यकता होती थी, किंतु सिंचाई के साधन बहुत कम थे। गांव के एक कुएं में एक पंडित का रहट अभी नया-नया लगा था। रहट एक बैलगाड़ी के पहिए के बराबर बड़ी–सी घिर्री होती थी जिस पर से गुजरती हुई पचासों डब्बेनुमा छोटी-छोटी बाल्टियां कुएं के पानी में लटकी होती थीं। इस मशीन को दो बैलों की जोड़ी के माध्यम से गन्ना की पेराई करने वाली कल (मशीन) की तरह चलाया जाता था। इस तरह रहट के चलने से बाल्टियों का पानी लगातार कुएं से बाहर नाली में गिरकर खेतों में चला जाता था। पंडित रहट किराए पर चलाते थे। सिंचाई की व्यस्तता के कारण हमारे घर वालों की बारी रात के समय आई। अर्थात गन्ने की सिंचाई के लिए रात भर रहट हांकना था। वहां रात भर लालटेन जलाकर रखना था। किंतु मिट्टी का तेल समाप्त हो गया था। अतः रात के समय मुझे टड़वां गांव की एक दुकान से मिट्टी का तेल लाने के लिए भेजा गया। मैं अंगोछे में आधा सेर जौ बांधकर तेल लेने चल पड़ा। ऐसे किसी भी काम के लिए घर वाले हमेशा रात के समय मुझे ही भेजा करते थे जिसका एकमात्र कारण यह था कि अपशकुन होने के कारण मेरा चाहे जो भी अनिष्ट हो जावे किंतु घर के किसी अन्य व्यक्ति का कुछ न बिगड़े। यहां तक कि घर का कोई आदमी बरहलगंज बाजार जाता और लौटते समय रात हो जाती, तो हमेशा मुझे मुर्दहिया के पास भेजकर बाजार गए आदमी को जोर से चिल्लाकर पुकारने को कहा जाता था। मुर्दहिया के सन्नाटे से लगाई गई मेरी आवाज बहुत दूर तक जाती जिसे सुनकर बाजार से लौटता हुआ आदमी मेरी ही तरह चिल्लाकर कहता: 'आवत हंई'। मैं उन्हें लेकर घर वापस आ जाता। किंतु जब कभी मैं कहीं से रात होने पर लौटता, घर से किसी को वैसी हांक लगाने के लिए नहीं भेजा जाता।

पताड़ी जब भी बोई जाती, एक उत्सव–सा माहौल हो जाता था। दलित बस्ती के अपने-अपने सभी पट्टीदार उसमें सहयोग देते तथा बोवनी समाप्त होने पर सभी हिस्सेदारों को 'ऊखभोज' दिया जाता। ऊखभोज की दावत शादी-विवाहों जैसी होती थी। ऊखभोज के पीछे मान्यता यह थी कि गन्ना जीवनदाई फसल है, इसलिए उसकी बोवाई का दिन त्योहार जैसा होता था। बोवाई के बाद गन्ने के खेतों में पानी की बहुत ज्यादा आवश्यकता होती थी, किंतु सिंचाई के साधन बहुत कम थे। गांव के एक कुएं में एक पंडित का रहट अभी नया-नया लगा था।

(अगले अंक में जारी)

लोग ऐसे भी सोच रहे हैं

स्रोत : **सोशल मीडिया**

क्या ये मेगा फिल्में दर्शकों को सिनेमाघर में वापस ले आएंगी !

सुभाष के झा

हमसे विदा ले चुका 2020 का वर्ष सिनेमा घरों के लिए एक ऐसे जहाज की तरह था जो बस मानो डूबने के लिए ही बना था। सिनेमाघर बीते वर्ष में दर्शकों को आकर्षित करने में असफल रहे। लेकिन वर्ष 2021 संभवतः इस ज्वार का रुख पलट सकता है। इस बार हमारे पास आकर्षित करने वाली बड़ी फिल्मों की एक लंबी श्रृंखला है जिनसे उम्मीद है कि वे संभवतः दर्शकों को फिर से सिनेमाघरों में खींच लाने में कामयाब होंगी।

सूर्यवंशी

चर्चित फिल्मकार रोहित शेट्टी की टीम 'सूर्यवंशी' फिल्म के साथ पहली बार अक्षय 'जुबली स्टार' कुमार के साथ आ रही है। क्या हमें इससे अधिक कुछ और कहने की जरूरत है? इस फिल्म में अजय देवगन और रणवीर सिंह मेहमान कलाकार के रूप में हैं। कैटरीना कैफ इस फिल्म के आकर्षण का एक और फैक्टर हैं।

गंगूबाई काठियाबाड़ी

जाने-माने निर्माता-निर्देशक संजय लीला भंसाली की गैंगस्टर की कहानी पर आधारित महाकाव्यात्मक फिल्म 'गंगूबाई काठियाबाड़ी' अभिनेत्री आलिया भट्ट के अभिनय को एक दूसरे ही स्तर पर ले गई है। सच कहें तो आलिया का ब्रॉदर मादाम और कुख्यात डॉन के रूप में एक नया अवतार हुआ है। संजय लीला भंसाली इसे अब तक का अपना सबसे बेहतरीन काम मानते हैं।

केजीएफ 2

कन्नड़ के सुपर स्टार यश ने मुझे बताया कि केजीएफ गाथा की पार्ट 2 ज्यादा व्यापक है। यह पार्ट 1 के मुकाबले कहीं ज्यादा भव्य-प्रभावशाली है, ज्यादा नाटकीयता से भरी हुई है और बहुत ही हार्ड हिटिंग है। वह कहते हैं, "हमने पार्ट 1 को अपने कन्नड़ प्रशंसकों के लिए बनाया था, हमें इसके बारे में बहुत ही कम पता था कि यह हर भाषा के दर्शकों को पसंद आएगी। अब पार्ट 2 को बहुत ही सोच-समझकर कर अखिल भारतीय दर्शकों के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय दर्शकों के लिए भी तैयार किया गया है।"

आरआरआर

'बाहुबली' के बाद एसएस राजमौली!! यहां बस एक ही समस्या है और वह है दर्शकों की गगनचुंबी अपेक्षाएं। मुझे इस तरह का आभास क्यों हो रहा है कि राजमौली सभी अपेक्षाओं पर खरे उतरेंगे बल्कि कुछ ज्यादा ही कर दिखाएंगे। राजमौली के पिता केवी विजयेंद्र प्रसाद जिन्होंने 'आरआरआर' फिल्म की कहानी लिखी है, ने बताया कि इस फिल्म को ऐसा आकार और ढांचा दिया गया है कि वह 'बाहुबली' फिल्म के बाद अपना वजूद बना सके। मुझे उन पर पूरा विश्वास है।

राधे इंडियाज मोस्ट वॉन्टेड भाई

दर्शकों को सिनेमाघरों में दौड़ते हुए लाने के लिए बस दो शब्द ही पर्याप्त हैं-सलमान खान।

83

क्रिकेट, कपिल, रणवीर सिंह और दीपिका पादुकोण। क्या इनके बावजूद कोविड इतना शक्तिशाली है कि दर्शकों को सिनेमाघर से दूर रख सके? निर्देशक कबीर खान कहते हैं कि मुझे पूरा विश्वास है कि दर्शक इस फिल्म को देखने के लिए सिनेमाघरों में जरूर लौटेंगे।

नो टाइम टु डाई

जेम्स बॉन्ड की इस नई फिल्म के बारे में कहा जा रहा है कि इसमें जेम्स बॉन्ड इतने मृदुभाषी मक्कार तथा स्पर्शनीय नजर आए हैं कि अगर सिने-भविष्यवक्ताओं की मानें तो यह फिल्म पूरे विश्व में फिल्म प्रेमियों के पूरे समुदाय को सिनेमाघरों में खींच कर वापस लाने का दम रखती है। जेम्स बॉन्ड सीरीज की यह पच्चीसवीं फिल्म वह आखिरी फिल्म भी होगी जिसमें हम डेनियल क्रेग को अंतिम बार एजेंट 007 के रूप में अभिनय करते हुए देखेंगे। सही है, समय आ गया है कि हमें दोबारा से सिनेमाघरों की तैयारी कर लेनी चाहिए।

मिशन इम्पॉसिबल 7

इस फिल्म की पूरी शूटिंग कोविड के दौरान हुई है। मौजूदा हालातों के मद्देनजर इस फिल्म की शूटिंग के दौरान जितनी भी तकलीफें उठाई गई होंगी, उन्हें देखते हुए इसका टाइटल बहुत ही प्रासंगिक जान पड़ता है। टॉम क्रूज दुनिया के अत्यधिक चर्चित और लोकप्रिय कलाकार हैं। अगर वह लोगों को सिनेमाघरों में लाने में सक्षम नहीं हुए तो फिर कौन होगा?

बेल बॉटम

इस फिल्म में हम अक्षय कुमार को फिर से देखेंगे। लेकिन इस बार 1980 के दशक की पृष्ठभूमि में रचे गए एक क्राइम थ्रिलर में। इस फिल्म में अक्षय कुमार एक रॉ एजेंट की भूमिका में हैं। यह पहली फिल्म है जिसे कोविड लॉकडाउन के बाद विदेश में फिल्माया गया है। इस फिल्म की शूटिंग स्कॉटलैंड में की गई है।

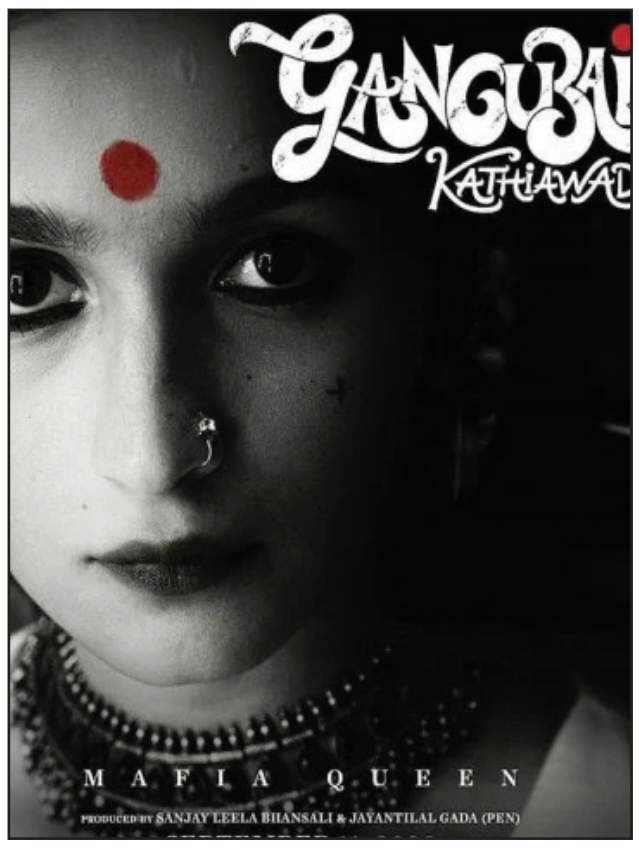

हम सभी जानते हैं कि बीता वर्ष 2020 हम सभी के लिए एक पीड़ादायक और दुःस्वप्न से भरा हुआ साल रहा है। सिनेमा की दुनिया भी इसे अछूती नहीं रही। और कोविड महामारी के चलते सारे सिनेमाघर एक मौन में डूब गए। लेकिन वक्त और हालात हमेशा एक जैसे नहीं रहते। हम जानते हैं कि समय गतिमान है। निराशाओं के बीच से ही आशा की किरण फूटती है। सभी फिल्मप्रेमी इस वर्ष यही दुआ करते हैं कि वे अपनी पसंदीदा फिल्मों को फिर से सिनेमाघरों के जाने-पहचाने माहौल में उस रुपहले पर्दे पर देख सकेंगे। इस साल बहुत सारी मेगा फिल्में आ रही हैं। उम्मीद है कि बड़े फिल्मों की यह श्रृंखला सिनेमाघरों की खोई हुई रौनक को वापस लाने में समर्थ रहेगी।

कसूर क्या है इन नवजात शिशुओं का?

साल 2020 में लॉकडाउन की वजह से माना जा रहा था कि इस बार लावारिस हालत में मिलने वाले नवजात शिशुओं की संख्या काफी कम होगी। लेकिन आंकड़ों ने सभी अनुमानों पर पानी फेर दिया। आखिर, लॉकडाउन होने के बावजूद इस बार भी इतनी बड़ी संख्या में नवजात शिशुओं की हत्या और उनके परित्याग के पीछे क्या कारण रहा?

मौनिका आर्य

वर्ष 2020 में एक तरफ जहां सारी दुनिया कोरोना वायरस की वजह से घरों में दुबक कर बैठी थी, वहीं कुछ लोगों की जिंदगी में इस वायरस से भी कथित रूप से 'खतरनाक' कुछ ऐसा था जिससे वे किसी भी कीमत पर तुरंत छुटकारा पाना चाहते थे। यही वजह थी कि जान जोखिम में डालकर और इन्फेक्शन के खतरे को उठाकर भी वे छुपते-छुपाते अपने घरों से निकले और किन्हीं अंधेरे कोनों में जाकर उन्होंने खुद को इस कथित 'खतरे' से मुक्त कर लिया। उन्होंने इसकी भी चिंता नहीं की कि वे इस 'खतरे' को कहां डाल रहे हैं। ये सड़क किनारे उगी झाड़ियां, राख का ढेर, नाला, फ्लश पॉट, डस्टबिन, पानी से भरा कोई गड्ढा, नदी या फिर तालाब, कुछ भी हो सकता है... उन्हें सबसे पहले जो नजर आया उन्होंने अपने ऊपर मंडराते कथित इस 'खतरे' को उसी में डाल दिया। आखिर यह 'खतरा' था क्या?

यह था- एक मासूम नन्हा बच्चा या बच्ची जो खुद से अपनी करवट भी नहीं बदल सकता/सकती थी। यही नवजात शिशु कुछ लोगों को इतना डरा गया कि उन्होंने उसकी सांसें घोंट दी। सांसें घोंट दी कहना भी असल में उनके पाप के भार को कम करने-जैसा ही होगा क्योंकि उन्होंने इन नन्हें फरिश्तों के साथ क्रूरता की सभी सीमाओं को लाघंते हुए अमानवीय व्यवहार किया। जी हां, हम उन नवजात शिशुओं की बात कर रहे हैं जो वर्ष 2020 के दौरन झारखंड समेत देश के छह राज्यों में लावारिस हालत में मिले।

आपको अगर यह झूठ लग रहा है तो इन आंकड़ों पर नजर डालिए जिन्हें पा-लो ना अभियान के तहत एकत्र किया गया है। झारखंड में 2015 से शुरू हुआ यह अभियान नवजात शिशुओं के असुरक्षित परित्याग (अबेन्डन्मन्ट-एक्सपोजर ऑफ न्यूबॉर्न्स) और शिशु हत्या (इन्फैन्टिसाइड) की देश भर में हो रही घटनाओं को दर्ज करता है। साथ ही उनके मूल में छिपे कारणों को ढूंढता है।

लेख में आंकड़ों का जो चार्ट दिया गया है, यह वर्ष 2020 में मिले उन नवजात शिशुओं की संख्या है जो झारखंड, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा में लावारिस अवस्था में मिले। चार्ट में लाल रंग से अंकित संख्या लावारिस हालत में मिले उन नवजात शिशुओं की है जो या तो मृत मिले या फिर जो इलाज के दौरान जिंदगी की जंग हार गए। इन छह राज्यों में जनवरी, 2020 से नवंबर, 2020 तक मिलने वाली नवजात बच्चियों की संख्या 154 थी। वहीं लड़कों की संख्या 65 थी। इसके अलावा अज्ञात बच्चों की संख्या 67 रही। ये अज्ञात बच्चे वे थे जो मृत अवस्था में ऐसी कंडीशन में मिले जिनके जेंडर का पता नहीं चल पाया।

वर्ष 2020	लड़कियां		लड़के		अन-आइडेन्टिफाइड		कुल संख्या			
	ए	डी	ए	डी	ए	डी	ए	डी	ए+डी	+ यू
झारखंड (एफ) 30+ (एम) 24 + (यू)10	18	12	11	13		10	29	35	64	
बिहार (एफ) 31+ (एम) 11 + (यू)10	26	5	8	3	1	9	35	17	52	
यूपी (एफ) 32+ (एम) 09 + (यू)24	23	9	6	3	3	21	32	33	65	
मप्र (एफ) 19+ (एम) 07 + (यू)11	10	9	6	1	1	10	17	20	37	
राजस्थान (एफ) 21+ (एम) 07 + (यू)07	17	4	5	2	3	4	28	10	35	
हरियाणा (एफ) 21+ (एम) 07 + (यू)05	9	12	3	4		5	12	21	33	

नोट : *ए: उन नवजात शिशुओं की संख्या जो लावारिस अवस्था में जीवित मिले। *डी: लावारिस हालत में छोड़ दिए गए उन नवजात शिशुओं की संख्या जो या तो मृत मिले या फिर जिनकी इलाज के दौरान मृत्यु हो गई। *अन-आइडेन्टिफाइड (अज्ञात): लावारिस स्थिति में छोड़ दिए नवजात शिशुओं की संख्या जो मृत अवस्था में ऐसी कंडीशन में मिले कि उनके जेंडर का पता नहीं चल पाया। चार्ट में इसके लिए यू संकेतक का भी इस्तेमाल किया गया है। अन-आइडेन्टिफाइड (अज्ञात) कॉलम के ए वाले हिस्से में यह उन 8 नवजात शिशुओं की संख्या है जो जीवित अवस्था में मिले हैं लेकिन समाचार लिखे जाने तक उनके जेंडर के बारे में पूरा विवरण नहीं मिल पाया था।

गौर करने वाली बात यह है कि बाकी राज्यों की अपेक्षा झारखंड में लड़के (24) और लड़कियों (30) की संख्या में बहुत ज्यादा अंतर नहीं था। वहीं, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश-जैसे राज्यों में लड़के और लड़कियों के बीच तीन गुना तक अंतर पाया गया, यानी लड़कियों की संख्या इन राज्यों में लड़कों से तीन गुना तक ज्यादा रही। एक और बात। झारखंड में जो नवजात शिशु मिल रहे हैं, उनका सर्वाइवल रेट अन्य राज्यों की तुलना में काफी कम है। इस तथ्य के पीछे दो कारणों का हवाला दिया जा सकता है। एक, यहां बच्चों को अभी भी समय पर बेहतरीन इलाज मुहैया नहीं हो पा रहा है। बच्चों को सर्वोत्तम इलाज उपलब्ध होने में कई बार 8 से 10 घंटे तक की देर हो जाती है। जो क्रूशियल समय उनके इलाज में लगना चाहिए, वह अधिकारियों तक जानकारी पहुंचने, उसके बाद इन्हें अस्पताल पहुंचाने की व्यवस्था में ही जाया हो जाता है। और दूसरा जो प्रमुख कारण नजर आता है और जिसकी पुष्टि ये डेटा भी करता है, वह यह कि यहां लड़कियों के बराबर लड़कों की संख्या होना भी मृत नवजातों की संख्या में इजाफा होने का कारण हो सकता है। यह स्थापित तथ्य है कि लड़कियों में फाइटिंग स्पिरिट (लड़ने का जज्बा) लड़कों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है। क्योंकि झारखंड में परित्यक्त मिलने वालों में लड़कों की भी अच्छी खासी संख्या होती है जो जिंदगी के लिए बहुत जद्दोजहद नहीं कर पाते और इससे मोर्टेलिटी रेट बढ़ जाता है। कारण कोई भी हो, झारखंड-जैसे छोटे राज्य में 64 बच्चों का परित्यक्त अवस्था में मिलना और उनमें भी अधिकांश का सर्वाइव नहीं कर पाना यह दर्शाता है कि वहां शासन-प्रशासन अभी भी नवजात शिशुओं पर मंडराते इस खतरे को बहुत गंभीर नहीं मान रहा है।

साल 2020 में लॉकडाउन की वजह से यह माना जा रहा था कि इस बार लावारिस हालत में मिलने वाले नवजात शिशुओं की संख्या काफी कम होगी लेकिन इन आंकड़ों ने सभी अनुमानों पर पानी फेर दिया। लॉकडाउन होने के बावजूद इस बार भी इतनी बड़ी संख्या में नवजात शिशुओं की हत्या और उनके परित्याग के पीछे क्या कारण रहा होगा? इस बारे में व्हेयर आर इंडियाज चिल्ड्रेन की को-फाउंडर श्रीमती मीरा मारती कहती हैं कि लोगों के लिए इस बार अपने बच्चों को अबेन्डन करना आसान था क्योंकि कोरोना की वजह से अधिकांश लोग अपने घरों में बंद थे। कोई देखने या पकड़ने वाला नहीं था। इसलिए जिन्होंने कन्सीव कर लिया था और जो लॉकडाउन की वजह से एबॉर्ट भी नहीं करवा पाए, उन्होंने बच्चों को असुरक्षित छोड़ देना श्रेयस्कर समझा और लॉकडाउन के माहौल ने उन्हें सपोर्ट ही किया। तेलंगाना की रहने वाली श्रीमती मारती ने कहती हैं कि उनके राज्य में लावारिस हाल में छोड़े गए अधिकांश बच्चे जिंदा मिलते हैं क्योंकि उन्हें त्यागने वाले अकसर उन्हें मंदिर परिसर के आसपास या सड़क किनारे छोड़ देते हैं, ताकि कोई उन्हें देख ले। अक्सर ये बच्चे इलाज के बाद स्वस्थ हो जाते हैं और एडॉप्शन पूल में आ जाते हैं।

वहीं, हरियाणा के पलवल जिले की बाल कल्याण समिति की सदस्य श्रीमती अल्पना ने बताया कि हरियाणा के सोनीपत, झज्जर, मेवात, हिसार, कैथल, करनाल और पानीपत-जैसे जिलों में परित्यक्त बच्चे ज्यादा मिलते हैं। उनके अपने जिले पलवल में इस दौरान मात्र एक परित्यक्त शिशु मिली और उसे भी कोई व्यक्ति सुरक्षित कंबल में लपेटकर चाइल्ड केयर इंस्टीट्यूशन के गेट पर छोड़ गया था। हालांकि उपरोक्त डेटा से साफ जाहिर है कि हरियाणा में भी इन बच्चों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। वहां कुल 33 बच्चों में से सिर्फ 12 बच्चे ही जीवित मिले या जीवित बचे जबकि इससे लगभग दोगुने बच्चे मृत्यु को प्राप्त हुए। उधर, उत्तर प्रदेश में इस दौरान करीब 65 बच्चे मिले जिनमें से 32 बच्चे ही जीवित बचे। यहां भी मृत शिशुओं की संख्या जीवित बच्चों की तुलना में एक ज्यादा रही। झारखंड के पूर्व प्रधान सचिव संजय कुमार ने कुछ वर्ष पहले कहा था कि पा-लो ना द्वारा एकत्र ये डेटा टिप ऑफ आइसबर्ग है। सवाल यह है कि केंद्र और राज्य सरकारें कब इसे देखना पसंद करेंगी!